Rajeev Bansal's®

SBPD

नीतिशास्त्र
ETHICS

कॉपीराइट की गई सामग्री

© लेखक एवं प्रकाशक

संस्करण : 2018

Book Code : 8080

ISBN : 978-93-5167-173-2

"The reading of all good books is like a conversation with the finest man."

No part of this publication can be reproduced or copied in any form or by any means without permission in writing of the Publishers. Breach of this condition is liable for legal action.

Note: This publication is being sold on the condition and understanding that the information, comments and views it contains are merely for guidance and reference and must not be taken as having the authority of, or being binding in any way on, the author, editors, publishers and sellers, who do not owe any responsibility whatsoever for any loss, damage or distress to any person, whether or not a purchaser of this publication, on account of any action taken or not taken on the basis of this publication. Despite all the care taken, errors or omissions may have crept inadvertently into this publication.

All disputes are subject to the jurisdiction of competent courts in Agra.

एस बी पी डी पब्लिकेशन्स

3/20B, आगरा-मथुरा बाईपास रोड, निकट तुलसी सिनेमा, आगरा–282 002

दूरभाष : (0562) 2854327, 2527707, 4042977, 8307257009 मोबाइल : 09358177555, 09412258082-85

फैक्स : (0562) 2858183; e-mail : sbpd.publications@gmail.com; website : www.sbpdpublications.com

कॉपीराइट की गई सामग्री

विषय-सूची

अध्याय | पृष्ठ-संख्या

1. नीतिशास्त्र की परिभाषा, स्वरूप एवं क्षेत्र .... 1—9
[Definition, Nature and Scope of Ethics]

2. नीतिशास्त्र का महत्व एवं उपयोगिता .... 10—17
[Importance and Utility of Ethics]

3. नीतिशास्त्र का अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध .... 18—24
[Relation with other Sciences of Ethics]

4. नीतिशास्त्र की पद्धतियाँ .... 25—28
[Methods of Ethics]

5. नीतिशास्त्र का मनोवैज्ञानिक आधार .... 29—39
[Psychological Basis of Ethics]

6. शुभ और उचित का सम्प्रत्यय .... 40—49
[Concept of Good and Right]

7. कर्तव्य और नैतिक बन्धन .... 50—59
[Duty and Ethical Obligation]

8. सद्‌गुण .... 60—68
[Virtue]

9. नैतिक चेतना .... 69—81
[Moral Consciousness]

10. नैतिकता की आवश्यक मान्यताएँ .... 82—92
[Postulates of Morality]

11. नैतिक निर्णय .... 93—101
[Moral Judgement]

12. नैतिक आदर्श अथवा मापदण्ड .... 102—109
[Moral Idea or Standard]

13. अन्तः अनुभूतिवाद—नैतिक इन्द्रियवाद—(i) .... 110—117
[Intutionism : Moral Sense Theory—(i)]

14. अन्तः अनुभूतिवाद—काण्ट का बुद्धिवाद—(ii) .... 118—130
[Intutionism : Kant's Rationalism—(ii)]

कॉपीराइट की गई सामग्री

अध्याय | पृष्ठ-संख्या

15. उपयोगितावाद .... 131—151
[Utilitarianism]

16. आत्मपूर्णतावाद .... 152—163
[Perfectionism]

17. भारतीय नैतिक दर्शन (परिचय, विकास (वेदउपनिषद) वर्णाश्रम एवं पुरुषार्थ) ...... 164—170
[The Indian Ethical Philosophy]
[Introduction, Development (ved upnishada) Varnashram and Purushartha]

18. भगवद्गीता (निष्काम कर्म) का नैतिक दर्शन .... 171—181
[The Ethical Philosophy of Bhagwadagita (Nishkama Karma)]

19. महात्मा गाँधी का दार्शनिक नीतिशास्त्र .... 182—188
[The Ethical Philosophy of Mahatma Gandhi]

कॉपीराइट की गई सामग्री

अध्याय 1

नीतिशास्त्र की परिभाषा, स्वरूप एवं क्षेत्र

[DEFINITION, NATURE & SCOPE OF ETHICS]

सामाजिक पृष्ठ भूमि सदैव ही नीतिशास्त्र के सिद्धान्तों की ओर संकेत करती है चूँकि नीतिशास्त्र मानव जीवन के पथ प्रदर्शन के लिए कुछ मूल सिद्धान्तों को प्रतिपादित करता है एवं उनकी स्थापना करके विश्व कल्याण की भावना को संयोजित करता है। नीतिशास्त्र के लिए यह बताना आवश्यक नहीं कि मनुष्य क्या करे और किस परिस्थिति में वह किस प्रकार निर्णय ले, क्योंकि मानव के कर्मक्षेत्र की विस्तृता बहुत अधिक है और सभी मनुष्यों के साथ समान परिस्थितियाँ भी नहीं होतीं इसीलिए नीतिशास्त्र कुछ आदर्श मूलक सिद्धान्तों की व्याख्या करता है। मनुष्य के लिए यह बात अति आवश्यक है कि दूसरों के प्रति उसके मुख्य कर्त्तव्य क्या हैं? जिनका निर्धारण किया जा सके। इस सन्दर्भ में अनेक बार यह प्रश्न भी उठता है कि क्या ऐसे मूल सिद्धान्त या आदर्श की स्थापना सम्भव है? इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों ही हो सकता है। नकारात्मक इसलिए कि मनुष्य की जीवन सम्बन्धी परिस्थितियाँ इतनी जटिल हैं कि सम्भव नहीं कि सभी परिस्थितियों में मूल सिद्धान्त सटीक एवं औचित्यपूर्ण बैठे अर्थात् मूल सिद्धान्तों से सदैव इस बात की आशा नहीं रखी जा सकती कि वे मनुष्य को कर्त्तव्यों के प्रति सदैव सचेत रखेंगे एवं उचित मार्गदर्शन करेंगे। इन सब तत्वों को नीतिशास्त्र की परिभाषा, उसके स्वरूप एवं क्षेत्र की व्याख्या करके भली-भाँति समझा जा सकता है जोकि निम्नांकित रूप से प्रस्तुत की गयी हैं—

नीतिशास्त्र की परिभाषाएँ
(DEFINITIONS OF ETHICS)

मनुष्य के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन से सम्बन्धित कुछ निम्नांकित महत्वपूर्ण सवालों पर गम्भीरता से सोचा जाये और उनका उत्तर खोजने की कोशिश की जाये तो नीतिशास्त्र का स्वरूप तथा क्षेत्र को समझना सम्भवत: अधिक सरल हो सकेगा।

1. मनुष्य होने के नाते हमारे कर्त्तव्य क्या हैं? और उनका निर्धारण किस आधार पर तथा किसके द्वारा किया जा सकता है?
2. जब यह कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति अच्छा है या बुरा है या उसका चरित्र अच्छा या बुरा है, उसका कर्म उचित है या अनुचित, कुछ विशेष परिस्थितियों में कोई कर्म करना या न करना ही हमारा कर्त्तव्य है तब ऐसी स्थिति में इन वाक्यों अथवा निर्णयों का वास्तविक अर्थ क्या होता है?
   दूसरे शब्दों में, जब अपने दैनिक जीवन में 'अच्छा', 'बुरा', 'शुभ', 'अशुभ', 'उचित', 'अनुचित', 'कर्त्तव्य' आदि शब्दों का वाक्यों में प्रयोग करते हैं तो इन वाक्यों के माध्यम से हमें क्या कहना चाहिए?
3. जब व्यक्ति व समाज के हितों में संघर्ष होता है तो उसे किस उपाय अथवा विधि द्वारा कम या समाप्त करना चाहिए?
4. क्या हमें अपने निर्णयों को सत्य प्रमाणित करने के लिए तर्क संगत कारणों को उचित अथवा तर्क संगत कारण प्रस्तुत करना चाहिए। यदि हाँ तो वे कारण क्या हैं? और उन कारणों को उचित अथवा तर्कसंगत क्यों मानना चाहिए?
5. क्या हमारे समस्त कर्मों का लक्ष्य केवल अपना सुख और हित होना चाहिए या हमें दूसरों के सुख या हितों के लिए ही सब कुछ करना चाहिए?

कॉपीराइट की गई सामग्री

6. क्या मनुष्य को कुछ कर्म करने या न करने की स्वतन्त्रता है? क्या उसे अपने विशेष कर्मों के लिए जिम्मेदार माना जा सकता है। यदि हाँ तो उसे क्यों, किन-किन कर्मों तथा कहाँ तक उसे उत्तरदायी मानना सही होगा?
7. क्या मनुष्य के जीवन का कोई परम लक्ष्य है? यदि हाँ तो वह परम लक्ष्य या साध्य क्या है? और उसे किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है? क्या मनुष्य को दूसरों की चिन्ता किये बगैर जीवन के इस परम लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए? मानव-जीवन से सम्बन्धित सवालों तथा ऐसे अन्य अनेक प्रश्नों पर नीतिशास्त्र अथवा नैतिक दर्शन व्यवस्थित रूप से विचार करता है और समुचित तथा संतोषप्रद उत्तर खोजने का प्रयास करता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मनुष्य के सामाजिक जीवन के साथ ही साथ किसी-न-किसी रूप में नीतिशास्त्र अथवा नैतिक दर्शन का प्रार्दुभाव हुआ। जब से मनुष्य ने दूसरों का साथ लेकर उसके साथ काम करना आरम्भ किया तो समाज का निर्माण हुआ। समाज का निर्माण होने पर उसी में रहते हुए मनुष्य को एक-दूसरे को सहयोग की आवश्यकता पड़ी। सहयोग से अपनी समस्याओं का निराकरण का मार्ग खोजने लगा तभी से कुछ ऐसे नियमों की आवश्यकता पड़ी, उन नियमों के पालन से मानव सुखमय या (आननन्द मय) तथा सामंजस्यपूर्ण जीवन बिताते हुए सामाजिक जीवन व्यतीत कर सके। समय के साथ-साथ धीरे-धीरे इन्हीं नियमों ने सामाजिक परम्पराओं अथवा रीति-रिवाजों का रूप धारण कर लिया। जिसका पालन करना प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक हो गया। इस प्रकार सामाजिक परम्पराओं तथा रीति-रिवाजों के साथ नीतिशास्त्र अथवा नैतिदर्शन का विकास हुआ।

यही कारण है कि आज भी अधिकतर सामान्य व्यक्ति सामाजिक परम्पराओं तथा नैतिक नियमों में कोई अन्तर नहीं कर पाते। सामाजिक परम्पराओं तथा रीति-रिवाजों के साथ नीतिशास्त्र का अटूट सम्बन्ध है। इसके अलावा नीतिशास्त्र या नैतिक दर्शन के अंग्रेजी पर्याय 'एथिक्स' तथा 'मोरल फिलॉसफी का अध्ययन करने पर पता चलता है कि इसका प्रादुर्भाव और विकास परम्पराओं तथा रीति-रिवाजों से ही हुआ है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि 'एथिक्सि' शब्द की उत्पत्ति यूनानी भाषा के शब्द 'एथिका' से हुई है जो उसी भाषा के शब्द 'एथोस' से उत्पन्न हुआ है जिसका अभिप्राय रीति-रिवाज होता है।

इस प्रकार 'मोरल' शब्द की लेटिन भाषा के 'मोरेस' शब्द से उत्पत्ति हुई है। जिसका अर्थ भी रीति-रिवाज होता है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि नीतिशास्त्र का प्रचलित सामाजिक परम्पराओं तथा रीति-रिवाजों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

लेकिन आज नैतिक दर्शन एक उन्नत दर्शन के रूप में उभर चुका है जिसमें मनुष्य के कुछ महत्वपूर्ण कर्मों पर व्यवस्थित ढंग से विचार करके उसके विषय में निर्णय दिया जाता है। इस सम्बन्ध में नीतिशास्त्र की संक्षेप में परिभाषा दी जा सकती है—"नीतिशास्त्र वह मानकीय अथवा आदर्शमूलक विज्ञान है जो सामाजिक जीवन व्यतीत करने वाले सामान्य मनुष्यों के आचरण या ऐच्छिक कर्मों पर निष्पक्ष एवं व्यवस्थित रूप से विचार करके उनके सम्बन्ध में उचित, अनुचित अथवा शुभ, अशुभ का निर्णय देने के लिए मापदण्ड प्रस्तुत करता है और इस निर्णय के आधार के लिए कुछ मूल सिद्धान्तों अथवा आदर्शों की स्थापना करता है।"

नीतिशास्त्र की यह परिभाषा संक्षिप्त होते हुए भी व्यापक है। इस परिभाषा को अच्छी प्रकार से जानने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत इसका अध्ययन किया जा सकता है—

1. यह कुछ 'मूल-सिद्धान्तों अथवा 'आधारभूत आदर्शों को स्थापित करता है।
2. यह एक 'आदर्श-मूलक' विज्ञान है।
3. यह समाज में रहने वाले सामान्य मनुष्यों' के आचरण के सम्बन्ध में ही निर्णय देता है।
4. नीतिशास्त्र एक 'विज्ञान' है।
5. यह केवल 'मनुष्यों' के आचरण पर विचार करता है।

संक्षेप में नीतिशास्त्र सम्बन्धी परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट है कि—

1. सामाजिक परिवेश के अन्तर्गत नीतिशास्त्र मानव जीवन के मार्ग दर्शन हेतु कुछ मूल सिद्धान्तों अथवा आदर्शों को स्थापित करने की चेष्टा करता है। नीतिशास्त्र के लिए यह बताना नामुमकिन है कि किस व्यक्ति को किस परिस्थिति व समय में क्या करना चाहिए? क्योंकि मानव जीवन का कर्म क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है और सभी परिस्थितियाँ सभी मनुष्यों के अनुकूल व समान नहीं होती हैं। फलस्वरूप नीतिशास्त्र कुछ ऐसे आधारभूत सिद्धान्तों

कॉपीराइट की गई सामग्री

और आदर्शों को स्थापित करता है। जिसके अनुसार लगभग अनुरूप परिस्थितियों में सामान्य व्यक्तियों के स्वयं अपने प्रति तथा दूसरों के प्रति मुख्य कर्त्तव्यों को निर्धारित किया जा सके। इस सम्बन्ध में कभी कभार ये सवाल पूछ लिया जाता है कि क्या किसी ऐसे मूल सिद्धान्त या आदर्श की स्थापना सम्भव की जा सकती है जो समस्त परिस्थितियों में सभी व्यक्तियों के समस्त कर्त्तव्यों को निर्धारित कर सके ? इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक (Positive) ही हो सकता है क्योंकि मनुष्य का जीवन जटिल व कई प्रकार की परिस्थितियों (समस्याओं) से घिरा हुआ है कि कोई भी सिद्धान्त या आदर्श उचित एवं कर्त्तव्य के सम्बन्ध में उसका हमेशा ठीक-ठीक पथदर्शन नहीं कर सकता। लेकिन नीतिशास्त्र कुछ ऐसे आधारभूत नियम, आदर्श या सिद्धान्त अवश्य प्रस्तुत कर सकता है। जो साधारणत: मनुष्यों को यह बता सकें किन उन्हें किन मूल कर्त्तव्यों का और क्यों पालन करना चाहिए ?

इस प्रकार कर्त्तव्य निर्धारण के सम्बन्ध में मनुष्य का समुचित मार्गदर्शन करने के लिए मूल आदर्शों या सिद्धान्तों की स्थापना का प्रयास ही नीतिशास्त्र का मुख्य लक्ष्य है। इसी कारण इसे 'आदर्श मूलक विज्ञान' कहा गया है।

नीतिशास्त्र एक आदर्श मूलक विज्ञान
(ETHICS IS A IDEAL SCIENCE)

नीतिशास्त्र एक आदर्श मूलक विज्ञान है किन्तु जो विज्ञान केवल तथ्यात्मक वर्णन करते हैं उन्हें 'विवरणात्मक विज्ञान' कहते हैं। उदाहरण के लिए वनस्पतिशास्त्र एक विवरणात्मक विज्ञान है क्योंकि वह पेड़-पौधों की सुन्दरता, अच्छा-बुरा या उनकी कुरूपता का मूल्यांकन न करके उनके वास्तविक रूप का वर्णन करता है जिस रूप में वह पाये जाते हैं।

इसी प्रकार से मनोविज्ञान भी एक विवरणात्मक विज्ञान है क्योंकि वह भी मनुष्य के उसी रूप का वर्णन करता है जिस रूप में वह होता है न कि उसकी मानसिक क्रियाओं का मूल्यांकन करता है। उदाहरण के लिए वह बताता है कि हम कर्म, अनुभव व चिन्तन किस तरह से करते हैं? हमारी, इच्छाओं, भावनाओं एवं संवेगों का विकास कैसे होता है और उनका स्वरूप क्या है हम किसी विषय को कैसे सीखते हैं और किस प्रकार अपना ध्यान उस पर केन्द्रित करते हैं, हम किसी विषय को जिसे हमने सीखा या अनुभव किया है उसको दोबारा याद कैसे करते है इत्यादि।

अधिकतर सामाजिक विज्ञान तथा भौतिक विज्ञान ऐसे ही विवरणात्मक विज्ञान हैं। लेकिन कुछ ऐसे विज्ञान भी हैं जो विवरणात्मक विज्ञान की श्रेणी में नहीं आते हैं क्योंकि इन विज्ञानों का मुख्य उद्देश्य किसी वस्तु अथवा विषय का मूल्यांकन करना होता है न कि तथ्यात्मक वर्णन करना। इन सभी विज्ञानों को मानकीय अथवा आदर्श मूलक विज्ञान कहा जाता है। किसी वस्तु का मूल्यांकन करने से आशय है कि जिस वस्तु का मूल्यांकन किया जा रहा है कि वह वस्तु उस मानक अथवा आदर्श के अनपुरूप है या नहीं। उदाहरणार्थ-जब हम किसी वस्तु को सुन्दर कहकर उसका मूल्यांकन करते हैं जब हमें यह निर्णय करना होता है कि जिस वस्तु को सुन्दर कहा गया है वह वस्तु सौन्दर्य के आदर्श के अनुरूप (समान) है। तर्कशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र तथा नीतिशास्त्र ऐसे ही आदर्श मूलक विज्ञान हैं।

तर्कशास्त्र—हमारे दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाले वाक्यों, तथा युक्तियों (उपायों) के सत्यापन की जाँच करने के लिए प्रमाणिक नियमों की स्थापना करता है।

सौन्दर्यशास्त्र—सौन्दर्य के अन्तर्गत हम उन तथ्यों का अध्ययन करते हैं जो यह बताता है कि किस आधार पर उस वस्तु को सुन्दर अथवा बदसूरत कहा जा सकता है ?

नीतिशास्त्र—इसी प्रकार नीतिशास्त्र का उद्देश्य हमें यह बताता है कि हम किन सिद्धान्तों, नियमों या आदर्शों के आधार पर किसी कर्म को उचित अथवा अनुचित और किसी व्यक्ति को उसके चरित्र के आधार पर अच्छा या बुरा, शुभ अथवा अशुभ कह सकते हैं।

इस प्रकार नीतिशास्त्र का उद्देश्य मनुष्य और उसके कर्मों का तथ्यात्मक वर्णन होकर उसके मूल्यांकन के मानक का निरूपण करना ही है। यही कारण है कि इसे 'आदर्श मूलक विज्ञान' की संज्ञा दी जाती है।

3. जैसा कि हम जानते हैं कि सामान्य जीवन व्यतीत करने वाले सामान्य मनुष्यों के आचरण पर ऐच्छिक कर्मों पर निष्पक्ष एवं व्यवस्थित रूप का विचार करके जो निर्णय देने के लिए मूल्यांकन किया जाता है। वह नैतिक शास्त्र की श्रेणी में आता है। इसके साथ ही दूसरों के साथ मिलकर रहते हुए पूर्ण सामाजिक जीवन व्यतीत करने की मानवीय आवश्यकता के सन्दर्भ में नैतिकशास्त्र का महत्व बढ़ जाता है।

शायद उस समय नैतिकशास्त्र की आवश्यकता महसूस न होती जब मनुष्य बिल्कुल रहता और उसके कर्म अन्य व्यक्तियों के कर्मों को न तो प्रभावित करते और न ही उन्हें प्रभावित करते। लेकिन सभी मनुष्यों को पूरे जीवन भर किसी समुदाय में रहकर सामाजिक जीवन व्यतीत करना पड़ता है, फलस्वरूप उसके अधिकतर कर्म किसी-न-किसी रूप में एक-दूसरे के जीवन को अवश्य ही प्रभावित करते हैं।

कॉपीराइट की गई सामग्री

मनुष्य का व्यवस्थित तथा सामंजस्यपूर्ण सामाजिक जीवन तब बहुत जटिल हो जाता है जब मनुष्यों की इच्छाओं, आकांक्षाओं व उद्देश्यों में भेद तथा विरोध के कारण परस्पर विरोध उत्पन्न होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए ही नीतिशास्त्र का विकास हुआ है। जो ऐसे नैतिक नियमों अथवा सिद्धान्तों का निर्माण करने का प्रयास करता है जिनके द्वारा समाज में यथासम्भव अधिक-से-अधिक सामंजस्य तथा व्यवस्था की स्थापना की जा सके।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि सभी साधारण मनुष्यों के लिए जो सामाजिक जीवन व्यतीत करते हैं के लिए नीतिशास्त्र का विशेष महत्व है।

उदाहरण के लिए आप यह जानते हुए कि आप किसी बाह्य विवशता के बिना अपनी स्वतन्त्र इच्छानुसाार कोई काम कर रहे हैं। इसी प्रकार विपत्ति काल में जब आप किसी व्यक्ति की सहायता करते हैं तब आपको इस बात का ज्ञान होता है कि आप उसकी सहायता कर रहे हैं। ऐसे सभी कर्मों को सचेतन ऐच्छिक कर्म कहा जाता है। लेकिन कुछ कर्म ऐसे भी होते हैं जिन्हें करने के लिए उसे सोचने-समझने तथा प्रयत्न पूर्वक करने की आवश्यकता नहीं होती। आदत या अभ्यास के फलस्वरूप किये जाने वाले सभी कर्म ऐसे ही कर्म हैं। इन कर्मों को अभ्यासजन्य कर्म कहते हैं अर्थात् आदत से विवश होकर जो कर्म किये जाते हैं उन्हें ऐच्छिक कर्म कहते हैं।

संक्षेप में उपर्युक्त दोनों प्रकार के ऐच्छिक कर्मों के औचित्य अथवा अनौचित्य के सम्बन्ध में निष्पक्ष निर्णय देकर उनका तर्क संगत मूल्यांकन करना ही नीतिशास्त्र का मुख्य उद्देश्य है।

अनैच्छिक कर्म—अनैच्छिक कर्म वे कर्म हैं जिस पर मनुष्य का कोई नियन्त्रण नहीं रहता और जिन्हें करने अथवा न करने के लिए वह स्वतन्त्र नहीं होता।

जैसे—हृदय की धड़कन, रक्त संचार, पाचन क्रिया आदि क्रियाएँ मनुष्य के जीवन के लिए अनिवार्य हैं, लेकिन यह सब क्रियाएँ उसके वश में नहीं होती और वह उन्हें जान-बूझकर स्वयं नहीं करता। यही कारण है कि यह क्रियाएँ अनैच्छिक क्रियाएँ कहलाती हैं। मानसिक दृष्टि से विक्षिप्त मनुष्यों, बहुत छोटे बच्चों तथा पशुओं के कर्म भी अनैच्छिक माने जाते हैं क्योंकि वे इन कर्मों को अपनी स्वतन्त्र इच्छा के अनुसार सोच-समझकर नहीं करते। यह सभी कर्म ऐसी शक्तियों के वशीभूत होकर करते हैं कि जिन पर उनका कोई नियन्त्रण नहीं होता है। नीतिशास्त्र ऐसे अनैच्छिक कर्मों का मूल्यांकन नहीं करता क्योंकि इनके सम्बन्ध में कर्त्ता को किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं होती।

4. अधिकतर विचारकों के अनुसार नीतिशास्त्र में विज्ञान की मुख्य विशेषताएँ पायी जाती हैं। इस कारण वह नीतिशास्त्र को 'विज्ञान' मानते हैं। विज्ञान का प्रमुख उद्देश्य किसी विषय, वस्तु अथवा घटना का यथासम्भव पूर्ण, क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित विवेचना करना और पूर्णतया निष्पक्ष होकर उससे सम्बन्धित सत्य की खोज करना है। इस प्रकार क्रमबद्धता, निष्पक्षता, वस्तुनिष्ठता तथा सत्य की खोज विज्ञान की प्रमुख विशेषताएँ हैं। अधिकतर दार्शनिकों के मतानुसार ये सभी विशेषताएँ नीतिशास्त्र में भी विद्यमान हैं।

नीतिशास्त्र भी मानव जीवन से सम्बन्धित नैतिक समस्याओं पर निष्पक्ष और व्यवस्थित रूप से विचार करता है। वह मनुष्यों की क्षमताओं तथा उसके स्वभाव के आधार पर इन समस्याओं का समाधान एवं स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न करता है तथा मानव जीवन के मार्ग दर्शन के लिए कुछ मूल सिद्धान्तों अथवा आदर्शों की स्थापना का प्रयत्न करता है। यह कारण पर्याप्त है कि, समुचित तर्क एवं निष्पक्ष परीक्षा के अभाव में वह किसी व्याख्या, समाधान, सिद्धान्त अथवा आदर्श को स्वीकार नहीं करता। अत: उसे विज्ञान कहना उचित ही होगा।

5. नीतिशास्त्र सामान्य मनुष्यों के ऐच्छिक कर्मों का मूल्यांकन करता है न कि मानसिक दृष्टि से विक्षिप्त व्यक्तियों, बहुत छोटे बालकों तथा पशुओं का। मनुष्य के कर्मों को मुख्यत: दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—ऐच्छिक कर्म तथा अनैच्छिक कर्म।

ऐच्छिक कर्म—ऐच्छिक कर्म वे हैं जिन्हें करने या न करने के लिए मनुष्य स्वतन्त्र होता है। दूसरे शब्दों में, जिन कर्मों पर मनुष्य का नियन्त्रण होता है कि जिन्हें वह अपनी स्वतन्त्र इच्छानुसार कर या छोड़ सकता है उन्हें ऐच्छिक कर्म कहा जाता है। इन कर्मों को वह किसी बाह्य अथवा आन्तरिक विवशता के कारण नहीं अपितु सोच-समझकर अथवा जान-बूझकर स्वतन्त्रतापूर्वक करता है। उसके इन्हीं ऐच्छिक कर्मों को आचरण की संज्ञा दी जाती है और नीतिशास्त्र इन्हीं कर्मों का मूल्यांकन करता है उनमें से अधिकतर ऐसे ही होते हैं जिन्हें करते समय मनुष्य को यह ज्ञान होता है कि वह अमुक कर्म कर रहा है।

कॉपीराइट की गई सामग्री

कुछ 'नैतिक' शब्दों का अर्थ
(MEANING OF SOME ETHICAL WORDS)

अब तक हमने नीतिशास्त्र की परिभाषा और उसके मूल उद्देश्यों के विषय में जानकारी ली और अब कुछ ऐसे शब्दों के बारे में अध्ययन करेंगे जिनका नीति शास्त्र में प्रयोग होता है और जिन्हें 'नैतिक शब्द' कहा जाता है। किसी भी व्यक्ति के चरित्र अथवा उसके आचरण का मूल्यांकन करते समय इन 'नैतिक शब्दों' तथा वाक्यांशों की आवश्यकता पड़ती है। इस अर्थ में 'शुभ' 'उचित', 'कर्त्तव्य', 'अच्छा', 'प्रशंसनीय' आदि शब्दों और इन सबके विपरीतार्थक शब्दों को 'नैतिक शब्द' कहा जा सकता है, क्योंकि इन शब्दों द्वारा हम किसी मनुष्य तथा उसके समस्त ऐच्छिक कर्मों के सम्बन्ध में अपना निर्णय देते हैं लेकिन जब हम किसी निर्जीव वस्तु अथवा निरैच्छिक कर्म का मूल्यांकन करते हैं तो इन्हें 'नैतिक शब्द' नहीं कहा जाता। नीतिशास्त्र के लिए सभी नैतिक शब्दों का विशेष महत्व है क्योंकि इन्हीं के द्वारा आचरण का मूल्यांकन किया जाता है और मूल्यांकन ही नीतिशास्त्र का विषय है, इस प्रकार नीतिशास्त्र के स्वरूप को भली-भाँति समझने के लिए इन नैतिक शब्दों का ठीक-ठीक अर्थ जान लेना बहुत ही आवश्यक है।

नैतिक शब्दों को मुख्यत: दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। पहली श्रेणी में वे शब्द आते हैं जिनका प्रयोग साधारणतया: मनुष्य के कर्मों का मूल्यांकन करने के लिए किया जाता है और दूसरी श्रेणी में वे शब्द आते हैं जिनका प्रयोग हम मुख्यत: व्यक्ति और उसके चरित्र का मूल्यांकन करने के लिए करते हैं। शब्दों के इस वर्गीकरण का अनुसरण करना सदैव ही सम्भव नहीं हो सकता है, फिर भी इससे इन शब्दों का अर्थ समझने में कुछ सहायता अवश्य ही मिल सकती है। हम अपने दैनिक जीवन में सामान्य अनुभव से यह जानते हैं कि हम कुछ नैतिक शब्दों का प्रयोग मनुष्य के कर्मों के सम्बन्ध में निर्णय देने के लिए करते हैं।

इस प्रकार जब यह कहा जाता है कि अमुक कर्म ही उस व्यक्ति का 'कर्त्तव्य' है तो इसका अर्थ यही होता है कि किसी विशेष नियम या आदेश का अनुसरण करते हुए उसे वही कर्म करना चाहिए। इन शब्दों का प्रयोग करते समय हम साधारणत: कर्मों के परिणामों के विषय में निर्णय नहीं देते। इसी कारण 'उचित' 'अनुचित', 'कर्त्तव्य', 'चाहिए', आदि शब्दों को परिणाम मूलक न मानकर सामान्यत: नियम मूलक ही माना जाता है।

उचित, अनुचित, कर्त्तव्य आदि शब्द प्रथम श्रेणी में और शुभ, अशुभ, अच्छा, बुरा, उत्तम, अधम, प्रशंसनीय, निंदनीय आदि शब्द द्वितीय श्रेणी में आते हैं।

उदाहरण के लिए हम कहते हैं कि उस व्यक्ति का अमुक कर्म, उचित, अनुचित है वही उसका कर्त्तव्य है इत्यादि। इन शब्दों का प्रयोग मनुष्य के चरित्र के मूल्यांकन के लिए नहीं करते हैं। यह नहीं कहा जाता कि अमुक व्यक्ति का चरित्र उचित या अनुचित है। स्पष्ट है कि इन शब्दों का प्रयोग मानवीय कर्मों मूल्यांकन के लिए किया जाता है। ये शब्द नियमों की ओर संकेत करते हैं न कि परिणामों की ओर। उदाहरण के लिए जब हम यह कहते हैं कि अमुक कर्म 'उचित' या 'अनुचित' है तो हमारा आशय यह होता है कि वह कर्म किसी विशेष नियम के अनुसार या उसके विरुद्ध है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि 'उचित तथा कर्त्तव्य इन दो शब्दों' के अर्थ में बहुत महत्वपूर्ण अन्तर है। जो नियमानुसार है वह कर्म 'उचित' है। लेकिन ये आवश्यक नहीं कि प्रत्येक उचित कर्म हमारा कर्त्तव्य है। बहुत से कर्म हमारे लिए कर्त्तव्य नहीं माने जाते जबकि वे उचित होते भी हैं। उदाहरण के लिए कुछ विषयों का अध्ययन करना उचित माना जा सकता है लेकिन यदि इन सभी विषयों में अथवा एक विषय में रुचि न होने पर अध्ययन करना कर्त्तव्य नहीं माना जा सकता।

इस प्रकार मनुष्य के लिए कर्त्तव्य में जो बाध्यता होती है वह केवल उचित कर्म में नहीं होती। यह समझना कठिन नहीं है कि कर्त्तव्य के मूल में निहित उक्त बाध्यता मनुष्य की सामान्य दुर्बलताओं पर विजय पाने के लिए समाज द्वारा ही उत्पन्न की गयी है। जो उन्हें अपने कर्त्तव्य के मार्ग से हटा देती है। कर्त्तव्य व उचित कर्म पूर्णतया भिन्न नहीं है। जबकि दोनों ही एक-दूसरे से घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं क्योंकि जो कर्म उचित है वह हमारा कर्त्तव्य भी हो सकता है। परन्तु उक्त घनिष्ठ सम्बन्ध के होते हुए भी उचित कर्म और कर्त्तव्य में महत्वपूर्ण अन्तर अवश्य ही है।

प्राय: हम कहते हैं कि अमुक कर्म शुभ, अशुभ, अच्छा या बुरा है। परन्तु जब हम उन शब्दों का कर्मों के सम्बन्ध में प्रयोग करते हैं तो हमारा वास्तविक अभिप्राय इन कर्मों को उचित अथवा अनुचित बताना ही होता है। सामान्यत: इन शब्दों (अच्छा, श्रेष्ठ, शुभ इत्यादि) का ठीक-ठीक प्रयोग व्यक्ति उसकी इच्छाओं, रुचियों अथवा उसके प्रयोजनों का मूल्यांकन करने के लिए ही किया जाता है। अपने दैनिक जीवन में हम अक्सर ही निर्णय दिया

कॉपीराइट की गई सामग्री

व लिया करते हैं कि अमुक व्यक्ति बहुत अच्छा या बुरा है, वह कार्य करते समय उस व्यक्ति का प्रयोजन अच्छा या बुरा नहीं था, इत्यादि।

उपर्युक्त व्याख्या की समाप्ति से पूर्व नैतिक निर्णय के विषय में जानना आवश्यक है। ऐसे प्रत्येक वाक्य को नैतिक निर्णय कहा जाता है। जिसके द्वारा कर्त्तव्य का बोध होता है या व्यक्ति के आचरण तथा चरित्र अथवा स्वयं व्यक्ति का ही मूल्यांकन किया जाता है। नैतिक निर्णय कानूनी निर्णय से अलग होता है और इन दोनों में ही आचरण का मूल्यांकन किया जाता है। नैतिक निर्णय का कानून राज्य का कानून नहीं होता है। ऐसा हो सकता है कि कोई आचरण कानूनी दृष्टिकोण से अनुचित न हो लेकिन नैतिक दृष्टिकोण से उसे अनुचित कहा जाये। उदाहरण के लिए 'क' न 'ख' के बुरे दिनों में मदद की लेकिन 'ख' ने 'क' के बुरे दिन आने पर उसकी सहायता नहीं की तो नैतिक दृष्टि से इसे अनुचित कहेंगे, लेकिन कानूनी दृष्टि में इसे अनुचित नहीं कहा जायेगा।

लेकिन कानूनी निर्णय का मानक अथवा आदर्श राज्य का कानून होता है। उदाहरण के लिए हम न्यायाधीश का निर्णय लें जो एक कानूनी निर्णय है। यदि अभियुक्त का आचरण राज्य के कानून के विरुद्ध नहीं है तो न्यायाधीश उसे उचित ही कहेगा।

नैतिक निर्णय तथ्यात्मक निर्णय से भी अलग होता है। 'तथ्यात्मक निर्णय' में किसी वस्तु से सम्बन्धित तथ्यों का केवल वर्णन होता है, उसका मूल्यांकन नहीं।

उदाहरण के लिए यह वाक्य कि ''उसने अपने मित्र को 'गधा' कहा'' एक 'तथ्यात्मक निर्णय' है क्योंकि इसमें उसके आचरण सम्बन्धी तथ्यों का वर्णनमात्र किया गया है। लेकिन जब यह कहा जाता है कि ''उसको अपने मित्र को 'गधा' कहना अनुचित था'' तब उस समय नैतिक निर्णय दिया जा रहा है क्योंकि उसके आचरण का मूल्यांकन हो रहा है।

नैतिक निर्णयों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—

1. नैतिक मूल्य बोधक 'निर्णय'।
2. नैतिक कर्त्तव्य बोधक 'निर्णय'।

1. **नैतिक मूल्य बोधक निर्णय**—नैतिक मूल्य बोधक निर्णयों का सम्बन्ध व्यक्तियों, उनकी इच्छाओं, रुचियों तथा उनके अभिप्रायों एवं प्रयोजनों से ही होता है। ये निर्णय भी दो प्रकार के हो सकते हैं—विशेष और सामान्य।

विशेष प्रकार के निर्णय किसी विशेष व्यक्ति, उसके किसी विशेष अभिप्राय अथवा प्रयोजन का मूल्यांकन करते हैं और सामान्य प्रकार के निर्णयों का उद्देश्य बहुत से व्यक्तियों, उनके प्रयोजनों या अभिप्रायों आदि का मूल्यांकन करता है।

विशेष प्रकार निर्णयों को इस उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है—''महात्मा गाँधी एक श्रेष्ठ पुरुष थे'', इस सम्बन्ध में उनका चरित्र प्रशंसनीय है, ''उनका प्रयोजन बहुत बुरा था'' इत्यादि। सामान्य प्रकार के निर्णयों के उदाहरणें के रूप में निम्नलिखित वाक्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं—''परोपकार, संयम व न्याय सद्‌गुण हैं'', ''व्यसनी और असंयमी व्यक्ति निकृष्ट चरित्र के होते हैं इत्यादि।''

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि नैतिक मूल्य बोधक निर्णय किसी–न–किसी रूप में व्यक्ति तथा उसके चरित्र का मूल्यांकन करते हैं, अत: वे नैतिक कर्त्तव्य बोधक निर्णयों से भिन्न है।

नैतिक कर्त्तव्य बोधक निर्णय—वें हैं जिनके द्वारा मनुष्य के किसी कर्म को उचित या अनुचित बताते हैं और यह कहते हैं कि हमें क्या करना चाहिए तथा क्या नहीं करना चाहिए ? ये निर्णय मानवीय कर्मों के औचित्य एवं कर्त्तव्य का बोध कराते हैं। उदाहरण के लिए—''मुझे उस दु:खी व्यक्ति की सहायता करनी चाहिए'', उसने जो कुछ किया वही उसका कर्त्तव्य था, ''तुम्हें उस गरीब को धोखा नहीं देना चाहिए।''

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सभी नैतिक कर्त्तव्य बोध निर्णय मनुष्य के कर्मों और कर्त्तव्य से सम्बन्धित हैं।

सद्‌गुण—'सद्‌गुण' शब्द मानवीय आचरण और चरित्र के मूल्यांकन की दृष्टि से बहुत महत्व है, संक्षेप में इस शब्द के अर्थ और मुख्य सद्‌गुणों के स्वरूप पर भी विचार करना आवश्यक है। 'सद्‌गुण' का अंग्रेजी पर्याय 'वर्च्यू' यूनानी शब्द 'एरेटे' का समानार्थक है, जिसका अर्थ होता है 'श्रेष्ठता' अथवा 'उत्कृष्टता'। नैतिक सन्दर्भ में 'सद्‌गुण' मनुष्य की वह श्रेष्ठ स्थायी मनोवृत्ति है, जिसका विकास करने के लिए उसे स्वयं निरन्तर प्रयास करना पड़ता है और जो सदैव ही उसके आचरण में दिखता है। 'सद्‌गुण' सतत् प्रयास अथवा अभ्यास द्वारा विकसित वह

कॉपीराइट की गई सामग्री

उत्कृष्ट मनोवृत्ति है जो व्यक्ति के स्वभाव अथवा चरित्र का अभिन्न अंग बन चुकी है और उसे सदैव ही नैतिक कार्य करने के लिए प्रेरित करती है; जैसे—जब कोई व्यक्ति खतरनाक एवं भयंकर परिस्थितियों पर दृढ़ता एवं धैर्य बनाये रखता है और बार-बार उन परिस्थितियों पर विजय हासिल करता है तब हम कहेंगे कि उसमें 'साहस' नामक 'सद्गुण' है। साहस उसके स्वभाव का स्थायी अंग बन गया है। इसी प्रकार वह यदि अपनी इच्छाओं, भावनाओं तथा वासनाओं पर उचित नियन्त्रण रखने का बार-बार प्रयास करता है तो उसका यह संयम सद्गुण हुआ। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि 'सद्गुण' मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्तियों-भूख, प्यास, काम वासना, क्रोध, भय, प्रेम आदि से बहुत भिन्न हैं क्योंकि इनका विकास करने के लिए उसे निरन्तर प्रयास और अभ्यास करना पड़ता है। इसका अभिप्राय है कि नैसर्गिक प्रवृत्तियों के विपरीत सद्गुणों का विकास करने या न करने के लिए मनुष्य स्वयं ही जिम्मेदार है।

इसी कारण नैतिक दृष्टि से सद्गुणों का विशेष महत्व है। इसकी अभ्यस्तता पाने के लिए व्यक्ति को चरित्रवान् होना चाहिए। सद्गुण ऐसे चरित्र के गुण हैं।

सुकरात, प्लेटो तथा अरस्तु इन तीन महान यूनानी दार्शनिकों ने सद्गुणों के स्वरूप और मानव कल्याण के लिए उनके महत्व का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

(I) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. नीतिशास्त्र का स्वरूप एवं क्षेत्र क्या है? इसकी सविस्तार विवेचना कीजिए।
2. मनुष्य होने के नाते हमारे कर्त्तव्यों का निर्धारण किस प्रकार किया जा सकता है? विस्तृत रूप से व्याख्या कीजिए।
3. ''क्या हमारे समस्त कर्मों का लक्ष्य मात्र स्वयं-सुख एवं हित होना चाहिए अथवा अन्य लोगों के हितों का ध्यान रखना भी आवश्यक है ?'' इस कथन की समीक्षात्मक व्याख्या कीजिए।
4. मानव जीवन का परम् लक्ष्य किस प्रकार नीतिशास्त्र में वर्णित नैतिक कर्त्तव्यों का बोध कराता है? समझाइए।
5. ''आज नैतिक दर्शन एक उक्त दर्शन के रूप में उभर चुका है।'' इस सन्दर्भ में व्याख्या कीजिए।
6. ''नैतिकशास्त्र एक आदर्श मूलक विज्ञान है'' उदाहरण सहित चर्चा कीजिए।
7. आदर्श मूलक विज्ञान के अन्तर्गत तर्कशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र एवं नीतिशास्त्र को ही स्थान दिया जा सकता है। समझाइए।
8. अनैच्छिक कर्म एवं ऐच्छिक कर्म की अवधारणा को सविस्तार समझाइए।
9. ''नीतिशास्त्र सामान्य मनुष्यों के ऐच्छिक कर्मों का मूल्यांकन करता है।'' निबन्धात्मक रूप से स्पष्ट कीजिए।
10. नैतिक शब्दों से क्या तात्पर्य है? विस्तार से समझाइए।

(II) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. नीतिशास्त्र के क्षेत्र का निर्धारण कीजिए।
2. नीतिशास्त्र की परिभाषा एवं प्रकृति स्पष्ट कीजिए।
3. नीतिशास्त्र एक आदर्श मूलक विज्ञान है। संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
4. नीतिशास्त्र मनुष्यों के आचरण पर ही विचार करता है? चर्चा कीजिए।
5. तर्कशास्त्र की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
6. नीतिशास्त्र की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
7. सौन्दर्यशास्त्र क्या है? स्पष्ट कीजिए।
8. अनैच्छिक कर्म की प्रकृति स्पष्ट कीजिए।
9. ऐच्छिक कर्म की प्रकृति स्पष्ट कीजिए।
10. नैतिक शब्द क्या है? बताइए।
11. नैतिक मूल्य बोधक निर्णय क्या है?
12. नैतिक कर्त्तव्य बोधक निर्णय को समझाइए।
13. सद्गुण की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

कॉपीराइट की गई सामग्री

(III) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

(A) बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. मनुष्य के कर्त्तव्यों का निर्धारण किस आधार पर होता है–
   (i) नैतिक (ii) अनैतिक
   (iii) ऐच्छिक (iv) अनैच्छिक।
2. मनुष्य के जीवन का महत्वपूर्ण बिन्दु क्या है–
   (i) आवश्यकता (ii) अनिवार्यता
   (iii) परमलक्ष्य की जानकारी (iv) उपर्युक्त में से कोई नहीं।
3. 'एथिक्स' शब्द की व्युत्पत्ति किससे हुई–
   (i) लैटिन भाषा (ii) यूनानी भाषा
   (iii) स्पेकिश भाषा (iv) यहुदी समुदाय।
4. मोरल शब्द की व्युत्पत्ति किस शब्द से हुई है–
   (i) मोरोस (ii) मारोस
   (iii) मोरेस (iv) मरोसे।
5. नीतिशास्त्र की प्रस्तुति क्या है–
   (i) आधारभूत आदर्शों की स्थापना (ii) सांस्कृतिक प्रस्तुति
   (iii) नैतिक अवधारणा (iv) उपर्युक्त में से कोई नहीं।
6. नीतिशास्त्र को क्या माना गया है–
   (i) एक विज्ञान (ii) एक साहित्य
   (iii) एक गद्य प्रस्तुति (iv) एक पद्य प्रस्तुति।
7. नीतिशास्त्र किस पर विचार करता है–
   (i) समाज के व्यवहार पर (ii) वस्तुगत विशेषताओं पर
   (iii) मनुष्य के आचरण पर (iv) उपर्युक्त सभी पर।
8. प्रमाणिक नियमों की जाँच किसके अन्तर्गत होती है–
   (i) सौन्दर्य शास्त्र (ii) तर्कशास्त्र
   (iii) आचारशास्त्र (iv) प्रचारशास्त्र

   [**उत्तर**–1. (i), 2. (iii), 3. (ii), 4. (iii), 5. (i), 6. (i), 7. (iii), 8. (ii)]

(B) सत्य/असत्य बताइए (Write True or False)

1. मनुष्य को कर्म करने एवं न करने की कोई स्वतन्त्रता नहीं है।
2. सौन्दर्य के अन्तर्गत हम सौन्दर्यता का अध्ययन करते हैं।
3. नीतिशास्त्र एक आदर्श मूलक विज्ञान है।
4. मनुष्य का जिन कर्मों पर नियन्त्रण होता है, अनैच्छिक कर्म कहलाते हैं।
5. मनुष्य का जिन कर्मों पर नियन्त्रण नहीं होता, ऐच्छिक कर्म कहलाते हैं।
6. एथिक्स शब्द की उत्पत्ति 'एथिका' से हुई है।
7. नीतिशास्त्र मनुष्य के कर्मों का मूल्यांकन करता है।
8. नीतिशास्त्र मानवजीवन के मूलभूत सिद्धान्तों को स्थापित करता है।

   [**उत्तर**–1. असत्य, 2. सत्य, 3. सत्य, 4. असत्य, 5. सत्य, 6. सत्य, 7. सत्य, 8. सत्य।]

(C) रिक्त स्थानों की पूर्त्ति कीजिए (Fill in the Blanks)

1. दैनिक जीवन में शुभ-अशुभ, उचित-अनुचित एवं अच्छा-बुरा सब..................के अन्तर्गत आता है।
2. ....एवं..................के कारण ही नीतिशास्त्र का विकास हुआ है।
3. एथिका शब्द का उद्‌भव..................से हुआ है।
4. नीतिशास्त्र एक मानकीय..................कहा जाता है।
5. नीतिशास्त्र का अध्ययन अंग्रेजी पर्याय..................के भी अन्तर्गत भी किया जाता है।
6. मनुष्य के..................में नीतिशास्त्र की मुख्य भूमिका होती है।

कॉपीराइट की गई सामग्री

7. तथ्यात्मक वर्णन करने वाले विज्ञान………………कहे जाते हैं।
8. दैनिक जीवन सम्बन्धी वाक्यों, युक्तियों एवं प्रमाणिक नियमों की जाँच………………के अन्तर्गत की जाती है।

[उत्तर—1. नैतिक कर्मों, 2. सामाजिक परम्पराओं, रीति-रिवाजों, 3. एथोस, 4. आदर्शमूलक विज्ञान, 5. मोरेल फिलॉसफी, 6. कर्त्तव्यों के निर्धारण, 7. विवरणात्मक विज्ञान, 8. तर्कशास्त्र।]

(D) **मिलान कीजिए** (Match the Following)

1. मानव आचरण सम्बन्धित है	(i) प्रथम श्रेणी
2. सौन्दर्यात्मक बोध वर्णन	(ii) ऐच्छिक कर्म
3. अनियन्त्रित कर्म	(iii) अनैच्छिक कर्म
4. उचित अनुचित श्रेणी	(iv) सौन्दर्य शास्त्र
5. नियन्त्रित कर्म	(v) नैतिक मूल्य बोधक निर्णय
6. शुभ-अशुभ प्रशंसनीय निन्दनीय	(vi) नीतिशास्त्र
7. ''महात्मा गाँधी श्रेष्ठ पुरुष थे''	(vii) द्वितीय श्रेणी

[उत्तर—1. (vi), 2. (iv), 3. (iii), 4. (i), 5. (ii), 6. (vii), 7. (v)]

◆

कॉपीराइट की गई सामग्री

अध्याय 2

नीतिशास्त्र का महत्व एवं उपयोगिता

[IMPORTANCE AND UTILITY OF ETHICS]

नीतिशास्त्र के महत्व की विवेचना करते हुए अनेक विचारकों ने इसे 'मूल्य' के दृष्टिकोण से व्यक्त किया है क्योंकि मानव जीवन में मूल्य शब्द उसकी आवश्यकता एवं मानसिक अवस्था के उस गुण की ओर संकेत करता है। जोकि मनुष्य की नैतिकता को स्पष्ट करते हैं अर्थात् उसकी आवश्यकता की पूर्ति यदि होती रहती है तो उसकी समस्त इच्छाओं की तृप्ति भी होती रहती है जोकि मनुष्य के लिए अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। इसलिए यहाँ हम नीतिशास्त्र के महत्व को 'मूल्य' के दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करेंगे।

मूल्य शब्द की परिभाषा (Definition of Value)—नीतिशास्त्र में 'मूल्य' शब्द का अर्थ क्या है? और नैतिक दृष्टि में मानव जीवन में क्या महत्व है ? 'मूल्य' शब्द की परिभाषा करना कठिन है क्योंकि विभिन्न प्रसंगों में इस शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है। 'मूल्य' शब्द किसी भौतिक वस्तु अथवा मानसिक अवस्था के उस गुण का ज्ञान कराता है जिसके द्वारा मानव की इच्छा पूरी होती है। इस परिभाषा के अनुसार मनुष्य के लिए उस सभी वस्तुओं तथा मानसिक अवस्थाओं का कुछ न कुछ मूल्य अवश्य है जिनके द्वारा उसकी इच्छाओं तथा आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इस प्रकार कह सकते हैं कि 'मूल्य' मानव की आवश्यकताओं तथा इच्छाओं पर निर्भर है क्योंकि इनके अभाव में मूल्य की कल्पना निरर्थक व असम्भव है। दूसरे शब्दों में, यदि मानव की कुछ इच्छाएँ व आवश्यकताएँ न होतीं तो उसके लिए किसी भी वस्तु अथवा मानसिक अवस्था का कोई मूल्य न होता।

मनुष्य के लिए सभी वस्तुएँ समान रूप से मूल्यवान नहीं होतीं, कुछ साधन के रूप में और कुछ स्वत: साध्य के कारण महत्वपूर्ण होती हैं। इस आधार पर समस्त मूल्यों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—साधन व साध्य मूल्य। साधन मूल्यों को परत: मूल्य और साध्य मूल्यों को स्वत: मूल्य भी कहा जाता है।

साधन मूल्य—वें सभी साधन मूल्य वस्तुएँ जो अपने आप में शुभ न होकर किसी अन्य वस्तु के साधन के रूप में ही शुभ होती हैं। उदाहरण के लिए—भोजन, वस्त्र, मकान, धन सम्पत्ति तथा अन्य सभी भौतिक वस्तुएँ अपने आप में शुभ नहीं हैं, वे जीवन-रक्षा, स्वास्थ्य तथा सुख के लिए आवश्यक साधन होने के कारण ही शुभ मानी जाती है। मकान इसीलिए मूल्यवान है कि ये हमारे स्वास्थ्य तथा जीवन-रक्षा में सहायक होते हैं। इसी कारण धन-सम्पत्ति का मूल्य भी इसी कारण है कि हम इसकी सहायता से जीवन में सुख का अनुभव कर सकते हैं। इसी कारण इन वस्तुओं से सम्बन्धित सभी मूल्यों को 'साधन मूल्य' की संज्ञा दी गयी है। ये मनुष्य की शारीरिक और आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, इसीलिए इन्हें साधन-मूल्यों को 'शारीरिक मूल्य' तथा 'आर्थिक मूल्य' भी कहा जाता है। मनुष्य के लिए इन साधन-मूल्यों का भी विशेष महत्व है क्योंकि ये उसके सुख, स्वास्थ्य और जीवन-रक्षा के अनिवार्य मूल आधार हैं। ऐसी स्थिति में अरबन तथा कुछ अन्य विचारकों के इस मत का समर्थन करना कठिन ही प्रतीत होता है कि ये साधन-मूल्य, साध्य-मूल्यों की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण और निम्न कोटि के मूल्य हैं।

साध्य मूल्य—स्वत: साध्य मानसिक अवस्थाओं से सम्बन्धित मूल्यों को 'साध्य मूल्य' कहा जाता है। विचारकों के अनुसार भौतिक वस्तुओं के विपरीत मनुष्य की कुछ मानसिक अवस्थाएँ किसी अन्य वस्तु के साधन के रूप में शुभ न होकर अपने आप में शुभ तथा स्वत: साध्य होती हैं। ये मानसिक अवस्थाएँ अपने परिणामों के

कॉपीराइट की गई सामग्री

कारण शुभ नहीं मानी जाती जबकि ये स्वत: साध्य और अपने आप में वांछनीय हैं। ऐसी स्वत: साध्य मानसिक अवस्थाओं से सम्बन्धित मूल्यों को ही 'साध्य मूल्य' कहा जाता है। इस सम्बन्ध में विचारकों का मत है कि ये मूल्य पूर्णत: परिणाम-निरपेक्ष होते हैं अर्थात् मनुष्यों के लिए मूल्यों का महत्व इनके परिणामों के कारण नहीं अपितु इनकी अपनी उत्कृष्टता के कारण ही है। इसीलिए ये विचार इन साध्य मूल्यों को उच्चतम मूल्य मानते हैं। उनके अनुसार ये साध्य मूल्य मनुष्य की जिन मानसिक अवस्थाओं से सम्बद्ध है उनका शुभत्व व्यक्ति, देश, काल और परिस्थितियों पर निर्भर नहीं होता—वे सबके सदैव शुभ व वांछनीय होती हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि कौन-सी मानसिक अवस्थाएँ अपने आप में शुभ एवं वांछनीय हैं? इस सवाल का कोई निश्चित और सर्वमान्य उत्तर देना लगभग असम्भव है क्योंकि इसके सम्बन्ध में विचारकों के कई मतभेद हैं। उदाहरण के लिए प्लेटो तथा अरस्तु दार्शनिक ज्ञान अथवा चिन्तन को ही स्वत: साध्य शुभ मानते हैं।

मूर का मत उक्त दार्शनिकों के विचारों से भिन्न है। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक '**प्रिसिंपया एथिका**' में उन्होंने कहा है कि सुन्दर वस्तुओं की अनुभूति में मनुष्य को जो सुख प्राप्त होता है वह आप में शुभ है वह भी अपने आप में शुभ तथा वांछनीय है।

इस सम्बन्ध में भारतीय दार्शनिकों ने अपने विचार व्यक्त किये थे। उनके अनुसार 'सत्यम', शिवम्, 'सुन्दर' अर्थात् कल्याण, सौन्दर्य ही स्वत: साध्य शुभ है। साधुसंत और धर्म परायण व्यक्ति स्वत: साध्य शुभ के सम्बन्ध में दार्शनिकों के उपर्युक्त विचारों को स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार ईश्वरोपासना ही अपने आप में शुभ तथा वांछनीय है। ऐसी स्थिति में किसी एक मानसिक अवस्था को 'स्वत:' साध्य शुभ के रूप में स्वीकार करना निश्चय ही अत्यन्त कठिन है।

सर्वप्रथम ड्यूई ने स्वत: साध्य शुभ की परिणाम-निरपेक्षता और मानव निरपेक्षता का खण्डन किया है। उनका कथन है कि विश्व में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसका शुभत्व अथवा मूल्य उसके परिणामों पर निर्भर न हो। हम किसी वस्तु या मानसिक अवस्था को मनुष्य के लिए उसके परिणामों के कारण ही शुभ अथवा अशुभ कह सकते हैं। ड्यूई का यह भी विचार है कि शुभ-अशुभ अंतत: मनुष्य की इच्छाओं पर ही निर्भर है। हम किसी वस्तु अथवा मानसिक अवस्था को केवल इसलिए शुभ कहते हैं कि वह किसी न किसी रूप में मनुष्य की कोई इच्छा पूर्ण करती है। मानवीय इच्छाओं के अभाव में शुभ व अशुभ की धारणा का कोई महत्व और अर्थ नहीं हो सकता। ड्यूई ने साधन-साध्य के भेद को भी अस्वीकार किया है जिस पर मूलत: स्वत: साध्य शुभ की धारणा आधारित है। उनका मानना है कि साधन और साध्य का भेद तथा कथित 'अन्तिम साध्य' की धारणा पर आधारित है, लेकिन यह धारणा कुछ दार्शनिकों की कल्पना मात्र है क्योंकि संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे 'अन्तिम साध्य' कहा जा सके। कुछ वस्तुएँ तात्कालिक साधन होती हैं और कुछ सुदूरवर्ती 'साधन'। किन्तु हम सुदूरवर्ती साधनों को ही साध्य मान लेते हैं।

इस प्रकार ड्यूए के अनुसार विश्व में केवल साधनों की ही अनन्त श्रृंखला है—स्वत: साध्य कुछ भी नहीं है। लेकिन उनके इस मत को स्वीकार करना बहुत कठिन है क्योंकि मूलत: साधना की धारणा ही साध्य पर आधारित है। अन्तिम साध्य के अभाव में साधनों की श्रृंखला महत्वहीन और निरर्थक हो जाती है। ड्यूई का यह कथन सत्य है कि मानवीय इच्छा से अलग शुभ-अशुभ की धारणा का कोई अर्थ नहीं हो सकता। परन्तु एक अन्तिम साध्य को स्वीकार कर लेने से इस मत का खण्डन नहीं होता और यह अन्तिम साध्य है 'आनन्द' जिसमें स्वाभाविक इच्छाओं की तृप्ति से प्राप्त शारीरिक सुख तथा दार्शनिक ज्ञान एवं चिन्तन से उपलब्ध मानसिक शान्ति और सन्तोष सम्मिलित है।

उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है उयूई इस तथ्य को मानवीय इच्छाओं की तृप्ति से प्राप्त शारीरिक सुख, मानसिक सन्तुष्टि, दार्शनिक चिन्तन एवं ज्ञान आदि से जोड़ते हैं जोकि मनुष्य के लिए अति महत्वपूर्ण हैं। विचारकों ने इसे 'मानव कल्याण' की संज्ञा दी है—मनुष्य के जीवन का परम् लक्ष्य अथवा अन्तिम साध्य महत्वपूर्ण है जो कि मानव जीवन को आनन्द के मार्ग की ओर ले जाता है जहाँ उसे संसार की वास्तविक वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

नीतिशास्त्र की उपयोगिता (Utility of Ethics)—नीतिशास्त्र की पूर्ण व्याख्या के अन्तर्गत आपने समझा कि नीतिशास्त्र का मानव जीवन में क्या मूल्य अथवा महत्व है? जहाँ एक ओर नीतिशास्त्र मूल्य की व्याख्या करता है वहीं दूसरी ओर इसकी उपयोगिता की ओर भी संकेत करता है क्योंकि मानव यदि सामाजिक प्राणी न हो तो वह निरे पशु के समान कहा जायेगा और जब वह अपने आचरण एवं व्यवहार के द्वारा समाज का एक अभिन्न

कॉपीराइट की गई सामग्री

अंग बन जाता है। तब उसके सदाचार उसकी नैतिकता सद्भाव, सद्गुण आदर्श एवं संस्कार उसको एक ऐसी श्रेणी में लाकर खड़ा कर देते हैं जहाँ वह सभ्य समाज के प्राणी के रूप में पहचाना जाता है। मानव-जीवन के आधार के लिए कुछ मूलभूत नैतिक सिद्धान्तों की आवश्यकता भी इसलिए होती है। नीतिशास्त्र की उपयोगिता के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न उठते हैं कि क्या नीतिशास्त्र आदर्शमूलक है? क्या यह समाज में रहने वाले मनुष्यों के आचारण का मूल्यांकन करता है? क्या नीतिशास्त्र के मूल भूत सिद्धान्त तर्क संगत व्याख्या करते हैं एवं क्या नीतिशास्त्र एक व्यावहारिक विज्ञान है।

उपर्युक्त प्रश्नों की व्याख्या यदि उचित प्रकार से की जाये तो निश्चित ही नीतिशास्त्र की उपयोगिता का आकलन हो सकता है। इसका एक मूल तत्व यह भी है कि नीतिशास्त्र का उद्देश्य मात्र सत्यता का अनुसन्धान करना है उनके लिए सिद्धान्तों एवं आदर्शों की स्थापना करना है न कि उन्हें व्यावहारिक जीवन में लागू करने का साधन या उपाय बताना। इसलिए नीतिशास्त्र के दार्शनिकों का विचार है कि नीतिशास्त्र के विकास एवं अध्ययन की मूल प्रेरणा मनुष्य की वह स्वाभाविक जिज्ञासा है जिससे वह प्रेरित होकर जीवन के सत्य को खोजने का प्रयास करता है। नीतिशास्त्र की उपयोगिता के सन्दर्भ में यहाँ कुछ नीतिशास्त्र सम्बन्धी विधाओं को स्पष्ट किया गया है जिसके अध्ययन करने से नीतिशास्त्र की उपयोगिता को अधिक भली-भाँति रूप से स्पष्ट किया जा सकता है।

नीतिशास्त्र की विधाएँ
(ARTS OF ETHICS)

1. नीतिशास्त्र के स्वरूप तथा क्षेत्र को समझने के पश्चात् नीतिशास्त्र की विधाओं के विषय में भी संक्षेप में समझ लेना आवश्यक है। इन विधाओं के अन्तर्गत हम नीतिशास्त्र की समस्याओं पर अध्ययन करेंगे कि वे कौन-कौन सी हैं? आधुनिक नीतिशास्त्रियों के अनुसार नीतिशास्त्र की दो मुख्य विधाएँ हैं। अधिनीतिशास्त्र व मानकीय अथवा आदर्शमूलक नीतिशास्त्र। अब संक्षेप में नीतिशास्त्र की इन दोनों विधाओं का क्रमशः वर्णन करते हैं।

1. **अधिनीतिशास्त्र**—अधिनीतिशास्त्र को 'विश्लेषणात्मक नीतिशास्त्र' अथवा 'आलोचनात्मक नीतिशास्त्र' की भी संज्ञा दी जाती है। इसका उद्देश्य नैतिक सिद्धान्तों या आदेशों की स्थापना करना नहीं बल्कि नैतिक निर्णयों के स्वरूप तथा अर्थ का विश्लेषण करना और ऐसी विधियों की खोज करना है जिनके द्वारा इन निर्णयों के औचित्य-अनौचित्य का निश्चय किया जा सके। इसके अन्तर्गत जिन मुख्य सवालों पर विचार किया जाता है उनमें कुछ इस प्रकार हैं—'शुभ', 'उचित', 'कर्त्तव्य' आदि नैतिक शब्दों का वास्तविक अर्थ क्या है अर्थात् जब हम इन शब्दों का प्रयोग करते हैं तो हम इनके द्वारा क्या कहना चाहते हैं? नैतिक निर्णयों का स्वरूप क्या है? क्या ये निर्णय पूर्णतया वस्तुनिष्ठ हैं? क्या इन नैतिक निर्णयों को सत्य या असत्य प्रमाणित किया जा सकता है। किन युक्तियों अथवा तर्कों को नैतिक निर्णयों के औचित्यकरण के लिए पर्याप्त तर्क स्वीकार किया जा सकता है और क्यों? इन तर्कों का स्वरूप क्या है? ये तर्क उन तर्कों से किस अर्थ में भिन्न होते हैं, जिनका प्रयोग अन्य विज्ञानों में होता है? ऐसे अनेक सवालों के जबाव अधिनीतिशास्त्र में तटस्थ दृष्टिकोण तथा वैज्ञानिक विधि से खोजने का प्रयत्न किया गया है।

अधिनीतिशास्त्र का मुख्य उद्देश्य आदर्शमूलक नीतिशास्त्र के अन्तर्गत आने वाले नैतिक निर्णयों तथा नैतिक सिद्धान्तों का 'आलोचनात्मक अध्ययन' करना है। इसी कारण इसे आलोचनात्मक नीतिशास्त्र भी कहा जाता है। किसी नैतिक सिद्धान्त का विश्लेषण करते समय अधिनीतिशास्त्री पूर्णतः तटस्थ रहता है क्योंकि उसका कार्य केवल आलोचनात्मक विश्लेषण करना ही होता है, उस सिद्धान्त का समर्थन अथवा खण्डन करना नहीं।

अधिनीतिशास्त्र की दो मुख्य समस्याएँ हैं जिन पर आदेश मूलक नीतिशास्त्र विचार नहीं करता। पहली—नैतिक शब्दों के अर्थ एवं नैतिक निर्णयों के स्वरूप का स्पष्टीकरण करना। दूसरी उन युक्तियों अथवा तर्कों की निष्पक्ष परीक्षा करना जो नैतिक निर्णयों के औचित्य-अनौचित्य का निश्चय करने के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं।

अधिनीतिशास्त्र का उदय और विकास मुख्यतः वर्तमान शताब्दी में ही हुआ है। इससे नैतिक दर्शन आदर्शमूलक नीतिशास्त्र तक ही सीमित रहा और दार्शनिकों ने इसकी मूल्य समस्याओं की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। बीसवीं शताब्दी में तर्कीय प्रत्यक्षवाद के उदय के पश्चात् रूडोल्फ कार्नेप, सी. एल. स्टीवेन्सन, ए. जे. एयर, एस. ई. टूलमिन. आर. एम. हेयर. पी. एच. नावेल स्मिथ आदि अनेक दार्शनिकों ने नैतिक निर्णयों के अर्थ, स्वरूप तथा औचित्यीकरण के सम्बन्ध में वे सब सबाल उठाये जिनका उल्लेख किया जा चुका है।

इतना ही नहीं, वर्तमान युग के बहुत से दार्शनिक तो इसे ही वास्तविक एवं सम्पूर्ण नैतिक दर्शन मानने लगे हैं। उनके मतानुसार दार्शनिक रूप में नीतिशास्त्रज्ञ का कार्य नैतिक निर्णयों के अर्थ एवं स्वरूप का विश्लेषण तथा स्पष्टीकरण करना है।

कॉपीराइट की गई सामग्री

हेयर ने नीतिशास्त्र की परिभाषा करते हुए कहा कि ''नीतिशास्त्र नैतिक भाषा का तर्कपरक अध्ययन है।''

इसी प्रकार एयर, स्टीवैन्सन, नॉबेल स्मिथ आदि अन्य दार्शनिक भी नीतिशास्त्र को नैतिक निर्णयों के स्पष्टीकरण, विश्लेषण तथा औचित्यीकरण तक ही सीमित मानते हैं।

इन सब दर्शनिकों का मत है कि नैतिक निर्णयों के स्वरूप अर्थ को अच्छी प्रकार समझे बिना आदर्शमूलक नीतिशास्त्र के किसी सिद्धान्त को सत्य या असत्य प्रमाणित नहीं किया जा सकता।

अधिनीतिशास्त्र उन्हीं नैतिक सिद्धान्तों तथा निर्णयों का स्पष्टीकरण एवं विश्लेषण करता है जिनकी स्थापना आदर्श मूलक नीतिशास्त्र द्वारा की जाती है। ऐसी स्थिति में इसे आदर्शमूलक नीतिशास्त्र का पूरक ही माना जा सकता है, अपने आप में सम्पूर्ण नैतिक दर्शन नहीं।

2. **आदर्श मूलक नीतिशास्त्र**—मानकीय अथवा आदर्श मूलक नीतिशास्त्र की सबसे प्राचीन विद्या है। वर्तमान शताब्दी में अधिनीतिशास्त्र के विकास से पूर्व नैतिक दर्शन आर्दश मूलक नीतिशास्त्र तक ही सीमित माना जाता था। नीतिशास्त्र को आर्दश मूलक तथा मानकीय विज्ञान भी कहा गया है। आर्दश मूलक नीतिशास्त्र का मुख्य उद्देश्य मनुष्य व उसके कर्मों के लिए कुछ विशेष नियमों, सिद्धान्तों या आदर्शों का युक्ति संगत प्रतिपादन करना है। यह हमें बताता है कि शुभ और अशुभ क्या है ? हमारे कर्त्तव्य क्या हैं ? हमें क्या करना चाहिए ? हमारे जीवन का परम लक्ष्य सुख या कुछ और हमें किन मूल सिद्धान्तों अथवा आदर्शों के आधार पर अपने कर्त्तव्यों को निर्धारित करना चाहिए ? इत्यादि। दूसरे शब्दों में, आदर्श मूलक नीतिशास्त्र के अन्तर्गत शुभ-अशुभ, उचित अनुचित, कर्त्तव्य, अन्तिम साध्य आदि से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करते हैं।

इन समस्याओं के सम्बन्ध में यह जो सिद्धान्त प्रस्तुत करता है उसके समर्थन में पर्याप्त एवं युक्ति संगत कारण देना आवश्यक होता है क्योंकि इन कारणों के अभाव में इसके सिद्धान्त निष्पक्ष रूप में मनुष्य का मार्गदर्शन नहीं कर सकते। इस प्रकार आदर्श मूलक नीतिशास्त्र का उद्देश्य मानव जीवन के लिए आधारभूत सिद्धान्तों या आदर्शों का प्रतिपादन करना ही नहीं, अपितु उचित एवं पर्याप्त तर्कों द्वारा उनका समर्थन करना भी है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि अनेक दार्शनिकों ने आदर्श मूलक नीतिशास्त्र को अत्यधिक महत्व दिया है। और इसे ही सम्पूर्ण नैतिक दर्शन के रूप में इसे स्वीकार किया है।

नीतिशास्त्र का क्षेत्र
(SCOPE OF ETHICS)

नीतिशास्त्र का क्षेत्र विस्तृत है। वे सभी समस्याएँ नीतिशास्त्र की विषय-वस्तु हैं, जो अन्य शास्त्रों तथा विज्ञानों को अलग करती हैं। निम्नलिखित सभी समस्याओं का अध्ययन नीतिशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है। अत: ये सब इसके क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं—

1.नैतिक निर्णयों को सत्य या असत्य प्रमाणित करने के लिए प्रस्तुत किये जाने वाले तर्कों के स्वरूप का विवेचन और इन निर्णयों के औचित्यीकरण के लिए वैज्ञानिक विधियों की खोज।

2. मानव जीवन के लिए ऐसे परम लक्ष्य अथवा अन्तिम साध्य की सम्भावना पर विचार करना, जिसकी प्राप्ति के लिए हम सबको सदैव प्रयास करना चाहिए।

3. नैतिक शब्दों के अर्थ का तथा नैतिक निर्णयों के स्वरूप का विश्लेषण।

4. मूल नैतिक सिद्धान्तों या आदर्शों की स्थापना जिनके आधार पर यह निश्चय किया जा सके कि किस प्रकार का चरित्र अच्छा है और किस प्रकार का बुरा है ?

5. इन नैतिक सिद्धान्तों या आदर्शों के समर्थन में पर्याप्त कारण तथा तर्क संगत युक्तियाँ प्रस्तुत करना।

6. समाज में रहने वाले सभी मनुष्यों के चरित्र तथा आचरण का मूल्यांकन। इसमें उनकी इच्छाएँ, रुचियाँ, प्रयोजन, ऐच्छिक कर्म आदि सभी सम्मिलित हैं जिन्हें हम शुभ या अशुभ, उचित अथवा अनुचित कहते हैं।

7. नैतिकता की ठीक-ठाक व्याख्या तथा नैतिक निर्णयों और अन्य निर्णयों के भौतिक भेद का स्पष्टीकरण जिसके आधार पर नैतिक निर्णयों को दूसरे सभी निर्णयों से पृथक् करके समझा जा सके।

इन सब समस्याओं के अतिरिक्त ऐसी अन्य सभी समस्याएँ भी नीतिशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं जो किसी न किसी रूप में नैतिकता से सम्बन्धित हैं।

क्या नीतिशास्त्र व्यावहारिक विज्ञान है ?

क्या नीतिशास्त्र व्यावहारिक विज्ञान है? इस प्रश्न के उत्तर के सम्बन्ध में दार्शनिकों में मतभेद हैं। मैकेन्जी तथा कुछ अन्य दार्शनिक नीतिशास्त्र को व्यावहारिक विज्ञान नहीं मानते। उनका विचार है कि वास्तव में कोई भी

कॉपीराइट की गई सामग्री

आदर्श मूलक विज्ञान व्यावहारिक विज्ञान नहीं होता तथा तर्कशास्त्र तथा सौन्दर्यशास्त्र की भाँति नीतिशास्त्र का उद्देश्य भी केवल सत्य का अनुसन्धान है, मानव-जीवन के लिए व्यावहारिक मार्गदर्शन नहीं। वह आधारभूत नैतिक सिद्धान्तों अथवा आदर्शों की स्थापना करता है, उन्हें व्यावहारिक जीवन में लागू करने के उपाय नहीं बताता। इस प्रकार इन दार्शनिकों का विचार है कि नीतिशास्त्र के विकास और अध्ययन की मूल प्रेरणा मनुष्य की स्वाभाविक जिज्ञासा है जिससे प्रेरित होकर वह जीवन के सत्य को जानने का प्रयत्न करता है, अत: व्यावहारिक जीवन से उसका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है।

इसके विपरीत विलियम लिली, स्टीवेन्सन, रिचर्ड बी. बान्ट, टूलमिन, हेयर, नावल-स्मिथ आदि। दार्शनिक नीतिशास्त्र को व्यावहारिक विज्ञान के रूप में स्वीकारते हैं कि नैतिक नियम किसी-न-किसी रूप में मनुष्यों के कार्यों पर प्रभाव अवश्य डालते हैं और इसी में इनकी सार्थकता है।

हेयर के मतानुसार सम्पूर्ण नैतिक भाषा 'परामर्शात्मक भाषा' है उनका कथन है कि सभी नैतिक निर्णय मूलत: 'परामर्शात्मक निर्णय' होते हैं क्योंकि वे दूसरों को अथवा हमें कुछ-न-कुछ करने का या न करने का परामर्श देते हैं। यह परामर्शात्मकता ही इन निर्णयों को वर्णनात्मक निर्णयों से पृथक् करती है। हेयर के मतानुसार नीतिशास्त्र इस मूल प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करता है कि "मुझे क्या करना चाहिए?" इस प्रकार नैतिक सिद्धान्त का उद्देश्य आचरण के सम्बन्ध में मनुष्य का मार्ग दर्शन करता ही है। नीतिशास्त्र के इस विषय में नावल स्मिथ भी हेयर से पूर्णत: सहमत है। इसी कारण उन्होंने नीतिशास्त्र को 'व्यावहारिक विज्ञान' कहा है। उनका मानना है कि मनुष्य की जिन क्रियाओं के लिए नैतिक भाषा का प्रयोग किया जाता है वे हैं स्वयं कुछ कर्म करने अथवा न करने का निश्चय करना और दूसरों को भी कोई कर्म करने या न करने का परामर्श देना। यह व्यावहारिक मार्गदर्शन ही नीतिशास्त्र की मुख्य विशेषता है।

स्टीवेन्सन के मतानुसार प्रत्येक नैतिक निर्णय में आज्ञात्मक तत्व अवश्य होता है जिसके द्वारा यह निर्णय किसी व्यक्ति को कोई कर्म करने या करने का सूक्ष्म अथवा परोक्ष आदेश देता है। यह आज्ञात्मक तत्व ही नैतिक निर्णयों को वर्णात्मक निर्णयों से पृथक् करता है।

इसी प्रकार टूलमिन के विचार में कि "नैतिक निर्णयों का उद्देश्य मनुष्य के व्यवहार को परिवर्तित तथा प्रभावित करना है।" उनके मतानुसार नीतिशास्त्र का मुख्य कार्य किसी समुदाय के सदस्यों की इच्छाओं तथा उनके कर्मों में सामंजस्य उत्पन्न करना ही है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वर्तमान युग के बहुत से दार्शनिक नीतिशास्त्र को व्यावहारिक विज्ञान मानते हैं। अन्य अनेक सामाजिक सिद्धान्तों की भाँति इसके भी दो पक्ष हैं—सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पक्ष। सैद्धान्तिक विज्ञान के रूप में यह मानवीय आचरण की अच्छाई-बुराई के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करता है और आधारभूत नैतिक सिद्धान्तों, आदर्शों अथवा मानकों की स्थापना करता है। इसका कार्य मानव जीवन के परम लक्ष्य की खोज और उसका स्वरूप निश्चित करना भी है। इस अर्थ में नीतिशास्त्र को उस अर्थ में पूर्णतया व्यावहारिक विज्ञान नहीं माना जा सकता, जिस तरह से चिकित्साशास्त्र व इंजीनियरिंग व्यावहारिक विज्ञान है। लेकिन नीतिशास्त्र के व्यावहारिक पक्ष को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि व्यक्ति व समाज दोनों के लिए ही इसकी व्यावहारिक उपयोगिता है। इसमें सन्देह नहीं कि किस व्यक्ति को किस परिस्थिति में कौन-सा कार्य करना चाहिए? यह बताना नीतिशास्त्र का उद्देश्य नहीं है। लेकिन ये सम्भव भी नहीं है क्योंकि, मनुष्य का जीवन इतना कठिन व जटिल है और उसकी परिस्थितियाँ भी अनेक हैं कि किसी भी नैतिक सिद्धान्त को सभी व्यक्तियों के लिए सभी परिस्थितियों में लागू नहीं किया जा सकता। यह भी सम्भव नहीं नीतिशास्त्र को पढ़कर कोई भी व्यक्ति चरित्रवान सद्‌गुणी हो ही जायेगा।

सुकरात का ये कथन उचित प्रतीत नहीं होता कि 'ज्ञान' ही सद्‌गुण है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि नीतिशास्त्र ज्ञान मनुष्य को अच्छा इन्सान बनाने और अपने कर्त्तव्यों को पूरा करने में पर्याप्त सहायता दे सकता है। यदि अन्य बातें समान रहें तो नीतिशास्त्र जानने वाला व्यक्ति अपने तथा दूसरों के आचरण एवं चरित्र का उस व्यक्ति की उपेक्षा अधिक न्यायसंगत ढंग से और निष्पक्षता पूर्वक मूल्यांकन कर सकता है जो नीतिशास्त्र के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता। जिस व्यक्ति ने विभिन्न नैतिक सिद्धान्तों का अध्ययन किया है उसका दृष्टिकोण अधिक व्यापक हो जाता है और वह मानव जीवन से सम्बाधित के प्रति उदार, निष्पक्ष एवं उस पर तर्कसंगत ढंग से विचार कर सकता है। इस ज्ञान से हमें अपने कर्त्तव्यों के पालन में सहायता मिल सकती है और हम अच्छा जीवन-यापन कर सकते हैं।

कॉपीराइट की गई सामग्री

इस प्रकार नीतिशास्त्र के इतिहास से हमें ज्ञात होता है कि सुकरात, प्लेटो, अरस्तु, ऐपिक्यूरस, बटलर, कान्ट, मिल व ह्यूम, बेंथम, सिजविक आदि अनेक महान् दार्शनिकों में अपने अलग-अलग नैतिक सिद्धान्तों द्वारा अपने-अपने ढंग से हमें यही बताने का प्रयास किया है कि किस प्रकार का जीवन-यापन करना चाहिए? इस प्रकार से नीतिशास्त्र की व्यावहारिक उपयोगिता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

नीतिशास्त्र की उपयोगिता व्यावहारिक उपयोगिता के साथ ही मानव के सामाजिक व्यवहार की दृष्टि से भी इसका बहुत महत्व है। ज्ञात है कि नीतिशास्त्र का विकास मनुष्य के सामंजस्यपूर्ण सामाजिक जीवन व्यतीत करने के प्रक्रम में माना जा सकता है। सभी नियम सामाजिक व्यवहार को नियन्त्रित करने व उन्हें प्रभावित करने के लिए बनाये गये हैं। 'शुभ', 'उचित', व 'कर्त्तव्य' आदि शब्दों की उपयोगिता सामाजिक जीवन व्यतीत करने वालों के लिए ही है।

इस सम्बन्ध में टूलमिन के विचारों का उल्लेख पहले भी किया जा चुका है कि समाज में रहने वाले मनुष्यों की इच्छाओं तथा रुचियों और उनके उद्देश्यों एवं स्वार्थों में सामंजस्य उत्पन्न करना ही नीति शास्त्र का मुख्य उद्देश्य व कार्य है।

इससे स्पष्ट है कि नीतिशास्त्र का अध्ययन हमें दूसरों के अधिकारों के प्रति अधिक उदार बनाकर हमारे सामाजिक व्यवहार को अधिक सन्तुलित और जीवन को अधिक सामंजस्यपूर्ण बना सकता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य के सामाजिक जीवन की दृष्टि से भी नीतिशास्त्र के ज्ञान की व्यावहारिक उपयोगिता स्पष्ट होती है।

उपर्युक्त विवेचन से ये निष्कर्ष निकलता है कि नीतिशास्त्र केवल सैद्धान्तिक विज्ञान ही नहीं अपितु व्यावहारिक विज्ञान भी है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

(I) **दीर्घ उत्तरीय प्रश्न** (Long Answer Type Questions)

1. नीतिशास्त्र में 'मूल्य' शब्द से क्या अभिप्राय है? नैतिक दृष्टिकोण से मानव जीवन में इसके महत्व की विवेचना कीजिए।
2. नैतिक मूल्यों के आधार पर विभाजित साधन एवं साध्य मूल्यों की विवेचना कीजिए।
3. ''सत्यम्'', 'शिवम्', 'सुन्दरम्', ही स्वत: साध्य शुभ है। इस सूक्ति की व्याख्या कीजिए।
4. नीतिशास्त्र की विधाओं से क्या अभिप्राय है? सविस्तार विवेचना कीजिए।
5. अधिनीतिशास्त्र एवं आदर्शमूलक नीतिशास्त्र से अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।
6. नीतिशास्त्र के क्षेत्र की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
7. क्या नीतिशास्त्र व्यावहारिक विज्ञान है? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
8. ''मनुष्य के लिए सभी वस्तुएँ समान रूप से मूल्यवान नहीं होतीं वरन् कुछ साधन एवं कुछ स्वत: साध्य के कारण भी महत्वपूर्ण होती हैं।'' निबन्धात्मक समीक्षा प्रस्तुत कीजिए।

(II) **लघु उत्तरीय प्रश्न** (Short Answer Type Questions)

1. मूल्य के महत्व को नीतिशास्त्र के सन्दर्भ में स्पष्ट कीजिए।
2. मूल्यों को कौन-से दो वर्गों में विभाजित किया गया है?
3. साधन मूल्य को संक्षेप में समझाइए।
4. साध्य मूल्य की प्रकृति स्पष्ट कीजिए।
5. 'सत्यम्', 'शिवम्', 'सुन्दरम्' की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
6. नीतिशास्त्र की विधाएँ क्या हैं? संक्षेप में बताइए।
7. विश्लेषणात्मक नीतिशास्त्र क्या है?
8. आदर्श मूलक नीतिशास्त्र क्या है?
9. नीतिशास्त्र सम्बन्धी कोई दो 'बिन्दुओं' की चर्चा कीजिए।

कॉपीराइट की गई सामग्री

(III) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

(A) बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. नीतिशास्त्र में मूल्य शब्द का क्या अर्थ है?
   (i) स्वत: साध्य (ii) साधन मूल्य
   (iii) साध्य मूल्य (iv) उपर्युक्त सभी।
2. जो वस्तुएँ अपने में शुभ न होकर किसी अन्य वस्तु के लिए शुभ होती हैं, वे हैं–
   (i) स्वत: मूल्य (ii) साधन के रूप में
   (iii) साध्य के रूप में (iv) उपर्युक्त में से कोई नहीं।
3. साधन मूल्यों को ये भी कहा जाता है–
   (i) शारीरिक मूल्य (ii) आर्थिक मूल्य
   (iii) साधन मूल्य (iv) उपर्युक्त सभी।
4. साधन मूल्य अभिनय मूल्य आधार होते हैं–
   (i) स्वास्थ्य व जीवन-रक्षा के (ii) सांस्कृतिक मूल्यों के
   (iii) आचार-विचार के (iv) उपर्युक्त में से कोई नहीं।
5. मानसिक अवस्थाओं से सम्बन्धित मूल्यों को कहा जाता है–
   (i) नैतिक मूल्य (ii) आदर्श मूल्य
   (iii) वैचारिक मूल्य (iv) साध्य मूल्य।
6. विचारकों के अनुसार मूल्य पूर्ण रूप से होते हैं–
   (i) परिणामकारी (ii) परिणाम-निरपेक्ष
   (iii) परिणाम-वाचक (iv) उपर्युक्त सभी।
7. साध्य मूल्यों को वैचारिक परिपेक्ष्य में माना जाता है–
   (i) उच्चतम मूल्य (ii) निम्नतम मूल्य
   (iii) मध्यम मूल्य (iv) उपर्युक्त में से कोई नहीं।
8. 'प्रिंसिपया एथिका' पुस्तक के लेखक हैं–
   (i) सुकारत (ii) प्लेटो
   (iii) मूर (iv) उपर्युक्त में से कोई नहीं।
9. स्वत: साध्य निम्न दृष्टिकोण से शुभ है–
   (i) शिवम् मनोनमाय (ii) 'सत्यम्' 'शिवम्' 'सुन्दरम्'
   (iii) सत्यम्-सुन्दरम् (iv) शिवम्, सौन्दर्य, स्वतम।

[**उत्तर**–1. (iv), 2. (ii), 3. (iv), 4. (i), 5. (iv), 6. (ii), 7. (i), 8. (iii), 9. (ii)]

(B) सत्य/असत्य बताइए (Write True or False)

1. मूल्य मानव की आवश्यकताओं पर निर्भर करता है।
2. मकान इसलिए मूल्यवान होता है क्योंकि वे हमारी आर्थिक उन्नति में सहायक होता है।
3. साधन मूल्यों को आर्थिक मूल्य भी कहा जाता है।
4. स्वत: साध्य मानसिक अवस्थाओं से सम्बन्धित मूल्यों को 'साध्य मूल्य' कहा जाता है।
5. मूल्य पूर्णत: परिणामकारी होते हैं।
6. प्लेटो एवं अरस्तु दार्शनिक ज्ञान एवं चिन्तन को ही स्वत: साध्य शुभ मानते हैं।
7. सर्वप्रथम डयूई ने स्वत: साध्य शुभ की परिणाम-निरपेक्षता का खण्डन किया है।
8. मनुष्य के लिए उसके परिणामों के कारण ही वस्तु को शुभ या अशुभ कहा जा सकता है।
9. भारतीय दार्शनिकों के अनुसार ईश्वरोपासुभ ही स्वयं में शुभ एवं वांछनीय है।

[**उत्तर**–1. सत्य, 2. असत्य, 3. सत्य, 4. सत्य, 5. असत्य, 6. सत्य, 7. सत्य, 8. सत्य, 9. सत्य।]

(C) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the Blanks)

1. नीतिशास्त्र में 'मूल्य' शब्द किसी..................अथवा..................के गुण का ज्ञान कराता है।
2. मानव की यदि..................न हों तो उसके लिए वस्तु एवं मानसिक अवस्था का महत्व नहीं होगा।

कॉपीराइट की गई सामग्री

3. मानव जीवन में··················समान रूप से··················नहीं होती।
4. मानव जीवन में··················का अत्यधिक महत्व होता है।
5. प्लेटो एवं अरस्तु ने··················अथवा··················को ही स्वत: साध्य शुभ माना है।
6. मानसिक अवस्था को मनुष्य के लिए उसके परिणामों के कारण ही··················एवं··················कहा जा सकता है।
7. ··················के अभाव में शुभ एवं अशुभ की धारणा का कोई महत्व नहीं होता।
8. डयूई के अनुसार साधन एवं साध्य का भेद··················की धारणा पर आधारित है।

[उत्तर—1. भौतिक वस्तु, मानसिक अवस्था, 2. आवश्यकताएँ पूर्ण, 3. समस्त वस्तुएँ, मूल्यवान, 4. साध्य एवं साधन मूल्यों, 5. दार्शनिक ज्ञान, चिन्तन, 6. शुभ एवं अशुभ, 7. मानवीय इच्छाओं, 8. 'अन्तिम साध्य'।]

(D) **मिलान कीजिए** (Match the Following)

1. ''विश्व में मात्र साधनों की ही अनन्त शृंखला है।''	(i) सम्पूर्ण नैतिक दर्शन के रूप में
2. नीतिशास्त्र की दो विधाओं में से एक विद्या	(ii) सुदूरवर्ती साधन
3. साधन एवं साध्य का भेद आधारित है।	(iii) आलोचनात्मक नीतिशास्त्र
4. कुछ वस्तुएँ तत्कालिक होती हैं और कुछ होती हैं।	(iv) अन्तिम साध्य पर
5. अधिनीतिशास्त्र को ऐसी संज्ञा भी दी गयी है।	(v) डयूई
6. अधिनीतिशास्त्र का उदय एवं विकास हुआ है।	(vi) अधिनीतिशास्त्र
7. आदर्श मूलक नीतिशास्त्र को महत्व दिया गया है।	(vii) वर्तमान शताब्दी में

[उत्तर—1. (v), 2. (vi), 3. (iv), 4. (ii), 5. (iii), 6. (vii), 7. (i)]

◆

कॉपीराइट की गई सामग्री

अध्याय 3

नीतिशास्त्र का अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध

[RELATION WITH OTHER SCIENCES OF ETHICS]

सामाजिक विज्ञानों की प्रकृति में यह विशेषता पायी जाती है कि वे किसी न किसी प्रकार अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध रखते हैं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता मनुष्य के सामाजिक प्राणी होने की है। वह आर्थिक सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक दृष्टि से विभिन्न प्रकार की क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं के प्रति उत्तरदायी होता है। इसलिए वह किसी न किसी रूप से सभी विज्ञानों का एक आवश्यक अभिन्न अंग है। चूँकि मनुष्य के समाज से जुड़े होने की बात उठती है तो निश्चित ही सामाजिक विज्ञानों के विवेचन का प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है। इसी प्रकार नीतिशास्त्र भी एक ऐसा विज्ञान है जो मानव सम्बन्धी अधिकारों के प्रति अधिक उदार बनाता है एवं मानव के सामाजिक व्यवहार को अधिक सन्तुलित व सामंजस्यपूर्ण बना देता है ऐसी दृष्टि में मनुष्य की व्यावहारिकता एवं व्यक्तित्व में और अधिक निखार आता है। नीतिशास्त्र मानव जीवन के अनेक पक्षों का अध्ययन अपनी सीमा में रहकर करता है जिसके लिए उसे कुछ अन्य विज्ञानों की सहायता लेना आवश्यक हो जाता है ऐसा नहीं है कि नीतिशास्त्र मात्र सहायता ही लेता है अपितु कहीं-न-कहीं अन्य विज्ञानों की सहायता भी करता है। यहाँ हम नीतिशास्त्र का अन्य विज्ञानों से क्या सम्बन्ध है। इस संदर्भ में निम्नांकित व्याख्या प्रस्तुत करेंगे–

नीतिशास्त्र का अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध
(RELATION WITH OTHER SCIENCES OF ETHICS)

अब तक हमने नैतिक दर्शन के स्वरूप, क्षेत्र और उसकी व्यावहारिक उपयोगिता पर अध्ययन किया। आगे नीतिशास्त्र तथा कुछ अन्य शास्त्रों के पारस्परिक सम्बन्ध पर भी संक्षेप में विचार कर लेना आवश्यक है। समाज में रहने वाले सामान्य मनुष्यों के जवीन के व्यावहारिक अथवा क्रियात्मक पक्ष का अध्ययन करने के कारण नीतिशास्त्र भी अनेक सामाजिक विज्ञानों या शास्त्रों से सहायता लेता है और किसी-न-किसी रूप में स्वयं भी उनकी सहायता करता है। ऐसी स्थिति में यह जानना बहुत आवश्यक है कि वे कौन से सामाजिक विज्ञान हैं जो नीतिशास्त्र पर पर्याप्त प्रभाव डालते हैं और स्वयं भी उनसे प्रभावित होते हैं ? यहाँ संक्षेप में कुछ ऐसे ही सामाजिक विज्ञानों पर विचार करते हैं जिनका नीतिशास्त्र से गहरा सम्बन्ध है।

1. **समाजशास्त्र और नीतिशास्त्र** (Sociology and Ethics)–नीतिशास्त्र का समाजशास्त्र से सम्बन्ध गहरा है क्योंकि नीतिशास्त्र उन्हीं सामान्य मनुष्यों के ऐच्छिक कर्मों का मूल्यांकन करता है जो किसी-न-किसी रूप में सामाजिक जीवन व्यतीत करते हैं। समाजशास्त्र मानव समाज के उद्‌गम विकास तथा ह्रास के कारणों और सामाजिक संस्थाओं, रीतिरिवाजों एवं प्रथाओं का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। वह बताता है कि आदिम युग तक मानव समाज विकास की किन-किन स्थितियों से गुजरा है और विकास के इस प्रक्रम के मूल कारण क्या रहे हैं ? मनुष्य के जीवन में सामाजिक प्रथाओं, नियमों एवं रीति-रिवाजों का क्या स्थान है ? और उनके लिए परिवार समुदाय विवाह, कर्म, नैतिकता आदि का क्या महत्व है ?

संक्षेप में, मनुष्य के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित सभी तथ्यों का वैज्ञानिक अध्ययन करना समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य है। नैतिकशास्त्र का समाजशास्त्र के साथ घनिष्ठता को देखते हुए कुछ दार्शनिकों ने उसे एक स्वतन्त्र विज्ञान न मानकर समाजशास्त्र का ही एक भाग माना है।

यद्यपि बहुत से दार्शनिक इस मत को स्वीकार नहीं करते, फिर भी इस मत में अधिक सत्य विद्यमान है। सभी नैतिक नियमों, सद्‌गुणों, कर्त्तव्यों तथा आदर्शों की सार्थकता इसलिए है कि मनुष्य समाज में रहता है और उसके

कॉपीराइट की गई सामग्री

अधिकतर कार्य किसी-न-किसी रूप में दूसरे व्यक्तियों को प्रभावित करते हैं तथा उनसे प्रभावित होते हैं। सामाजिक प्राणी होने के साथ-साथ वह अच्छा या बुरा कहलाता है और उसके आचरण को अच्छा या बुरा कहा जाता है। समाज से पूर्णत: अलग मनुष्य के लिए शुभ-अशुभ, उचित-अनुचित, नैतिक-अनैतिक का कोई अर्थ नहीं रहता है। इसी कारण अनेक दार्शनिक सभी नैतिक नियमों तथा आदर्शों का शाश्वत न मानकर सापेक्ष अर्थात् देश, काल और समाज पर आधारित मानते हैं।

समाजशास्त्र इसी यथार्थवादी दृष्टिकोण से नैतिक नियमों एवं आदर्शों का वैज्ञानिक अध्यन करता है। इस प्रकार नीतिशास्त्र जिन सामाजिक संस्थाओं, रीति-रिवाजों, मान्यताओं और प्रथाओं का मूल्यांकन करता है उनके वास्तविक स्वरूप तथा उनके विकास के प्रक्रम का ठीक-ठाक ज्ञान हमें समाजशास्त्र द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि नीतिशास्त्र अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए समाजशास्त्र से पर्याप्त सहायता लेता है और इन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

समाजशास्त्र का कार्य मनुष्य के सामाजिक जीवन का तथ्यात्मक वर्णन करना ही है, इसका मूल्यांकन करना नहीं। सामाजिक संस्थाओं के औचित्य अथवा अनौचित्य के विषय में निर्णय देना नीतिशास्त्र का ही कार्य है। समाजशास्त्र मनुष्य को समाज का ही एक अंग मानकर केवल उसके सामूहिक जीवन का अध्ययन करता है, जबकि नीतिशास्त्र मानव के स्वतन्त्र व्यक्तित्व को विशेष महत्व देता है और इसी आधार पर उसके चरित्र एवं ऐच्छिक कर्मों का मूल्यांकन करता है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि नीतिशास्त्र समाजशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हुए भी उसकी केवल एक शाखा मात्र ही है।

2. **धर्म और नीतिशास्त्र** (Religion and Ethics)—धर्म तथा नीतिशास्त्र में आपस में क्या सम्बन्ध है? इस सवाल का उत्तर देना बहुत कठिन है क्योंकि इसके सम्बन्ध में दार्शनिकों के विचारों में अत्याधिक भिन्नता है। कुछ दार्शनिक नीतिशास्त्र को धर्म का केवल एक भाग मानकर उसके स्वतन्त्र अस्तित्व को नहीं स्वीकारते। इसके विपरीत दूसरे विचारकों का मत है कि नीतिशास्त्र का धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि दोनों के क्षेत्र व उद्देश्य में मौलिक भिन्नता है। यहाँ कौन-सा मत सत्य के अधिक निकट है यह जानने के लिए दोनों मतों पर संक्षेप में विचार करते हैं।

धर्म की कोई निश्चित एवं सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि किसी दैवी शक्ति में मनुष्य की दृढ़ आस्था प्राय: धर्म का मूल अधिकार है और यह विश्वास उसमें कुछ ऐसी भावना उत्पन्न करती है जिससे प्रेरित होकर वह उस दैवी शक्ति की आराधना अथवा उपासना करता है तथा अपने समस्त कर्मों के लिए अपने आपको उसी के प्रति उत्तरदायी मानता है। इस प्रकार धर्म का सम्बन्ध मानव की बुद्धि से न होकर मूलत: उसकी भावना से ही है। अधिकतर धर्म परायण व्यक्तियों का मानना है कि मनुष्यों के सभी कार्य ईश्वर की इच्छा से ही निर्धारित होते हैं, उसकी अपनी इच्छा से नहीं। इसी कारण धर्म परायण विचारकों ने नैतिकता को मानवीय इच्छा न मानकर केवल ईश्वरीय इच्छा को माना है अर्थात् सभी कर्म ईश्वर की इच्छा द्वारा ही सम्पन्न किये जाते हैं। मध्य युग की भाँति वर्तमान युग में भी अनेक धर्म परायण विचारक नैतिकता को धर्म से पृथक् नहीं मानते।

इस सम्बन्ध में कार्ल बार्थ, रैन होल्डर एवं, एमिल ब्रूनर के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये सभी विचारक धर्म से अलग नीतिशास्त्र के स्वतन्त्र अस्तित्व को सही स्वीकारते हैं। कार्लबार्थ के अनुसार, ''मैं तथा-कथित नीतिशास्त्र को ईश्वरीय आदेश के रूप में ही देखता हूँ।'' ब्रूनर भी बार्थ के इस विचार से पूर्णतया सहमत है। वह भी नीतिशास्त्र की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करते हैं, और ईश्वरीय इच्छा को ही एकमात्र मानदण्ड मानते हैं।

शुभ तथा अशुभ की परिभाषा देते हुए उन्होंने कहा है कि ''ईश्वर जो कुछ करता है, चाहता है, वही शुभ है और जो ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध है वह अशुभ है।'' मात्र ईश्वरीय इच्छा में ही शुभ का अस्तित्व है। सदा ईश्वर की इच्छा के अनुसार कर्म करना ही शुभ है। इस प्रकार धर्मपरायण विचारकों के विचारानुसार नैतिकता सम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञान और सत्य का मूल आधार केवल ईश्वर या कोई अन्य दैवी शक्ति है जिसकी कृपा के बिना सत्य व ज्ञान को प्राप्त करना असम्भव है।

जिस व्यक्ति पर ईश्वर की कृपा होती है वह सत्य (नैतिकता सम्बन्धी) को जान सकता है व ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि धर्मपरायण विचारक नीतिशास्त्र को एक स्वतन्त्र विज्ञान न मानकर उसे केवल धर्म शास्त्र का ही एक भाग मानते हैं।

कॉपीराइट की गई सामग्री

इसके विपरीत बहुत से दार्शनिकों के विचारानुसार नीतिशास्त्र का धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि दोनों के उद्देश्य में मौलिक अन्तर है। नैतिक दृष्टि से कर्म किसी-न-किसी रूप में दूसरे मनुष्यों को प्रभावित करने के कारण ही शुभ या अशुभ माने जाते हैं, जबकि धार्मिक दृष्टि से कर्मों को इसीलिए शुभ या अशुभ माना जाता है कि वे देवी शक्ति की इच्छा के अनुकूल या प्रतिकूल है। नीतिशास्त्र का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को यह बताना है कि उसके लिए क्या शुभ है और क्या अशुभ तथा अन्य मनुष्यों के प्रति उसके कर्त्तव्य क्या हैं?

शुभ तथा कर्त्तव्य के लिए ज्ञान के लिए किसी दैवी शक्ति में विश्वास की आवश्यकता नहीं है, जो धर्म का मूल आधार है। आज तक कोई विचारक या दार्शनिक निश्चित रूप से ईश्वर या किसी दैवी शक्ति की सत्ता को प्रमाणित नहीं कर सका। इस प्रकार नैतिक शुभ के ज्ञान की प्राप्ति तथा अपने और दूसरों के प्रति नैतिक कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करना उसमें विश्वास रखना आवश्यक नहीं है। अनेक महान् विचारकों का आचरण और जीवन दर्शन इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। कॉल मार्क्स, बरट्रेन्ड रसल, गिल्बर्ट मरे, ज्यापाल सार्त्र आदि महान् दार्शनिक ईश्वर की सत्ता को स्वीकार न करते हुए भी मानव मात्र के प्रति अपने कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में अत्याधिक सजग और संवेदनशील रहे हैं। यह स्थिति केवल विचारकों के लिए नहीं, अपितु जीवन और संसार के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाले सामान्य सुशिक्षित व्यक्तियों के लिए भी सम्भव है। ईश्वर के अस्तित्व में आस्था न रखते हुए भी विचारशील सामान्य व्यक्ति अपने समस्त नैतिक कर्त्तव्यों का अच्छी प्रकार से पालन कर सकता है।

नैतिकता को ईश्वरीय इच्छा पर निर्भर मान लेने से कई दार्शनिक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती है। पहली कठिनाई यह है कि अभी तक ईश्वर की सत्ता ही संदिग्ध है। यदि ईश्वर के अस्तित्व को मान भी लिया जाये तब ऐसी स्थिति में ईश्वरीय इच्छा व नैतिकता के सम्बन्ध में ऐसे कई जटिल सवाल उठते हैं जिसका सर्वमान्य उत्तर देना असम्भव लगता है।

उदाहरण के लिए हम यह निश्चित रूप से कैसे जान सकते हैं कि हमारे नैतिक कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में ईश्वर की वास्तविक इच्छा क्या है? फिर यदि ईश्वर की इच्छा के विषय का पता लग भी जाये तब ये प्रश्न उठता है कि हम उसकी इच्छानुसार आचरण क्या करें ? यदि हम ईश्वर द्वारा दिये जाने वाले फल (पुरस्कार) अथवा दण्ड से भयभीत होकर ही शुभ कर्म करते हैं तो कान्ट का इस विषय में कहना उचित है। हमारा आचरण वास्तविक नैतिकता के विरुद्ध होगा क्योंकि पुरस्कार का लोभ या दण्ड का भय सच्ची नैतिकता का मूल कभी नहीं हो सकता।

वास्तव में कान्ट का विचार उचित ही प्रतीत होता है कि सच्ची नैतिकता ईश्वर या किसी दूसरी बाह्य शक्ति की इच्छा पर आधारित न होकर सदैव आत्मारोपित होती है अर्थात् मानव किसी बाहरी कारण से विवश न होकर स्वयं अपनी इच्छानुसार ही नैतिक नियमों का पालन करता है। यहाँ यह कह सकते हैं कि हमें ईश्वर की इच्छा के अनुसार इसलिए आचरण करना चाहिए कि वह शुभ है। यदि इस विचार को स्वीकार कर लिया जाय तो नैतिकता का मूल आधार ईश्वर की इच्छा नहीं बल्कि उसका शुभत्व ही माना जायेगा। इसका आशय यह हुआ कि नैतिक शुभत्व ईश्वर की इच्छा से अलग और स्वतन्त्र है।

इसके अतिरिक्त उक्त विचार को स्वीकार कर लेने से हमें कम से कम दो महत्वपूर्ण प्रश्नों का निश्चित उत्तर अवश्य देना होगा। पहला सवाल तो यह है कि ईश्वर की इच्छा के शुभ या अशुभ होने का वास्तविक मानदण्ड क्या है और इसे कौन तथा कैसे निश्चित कर सकता है? दूसरा प्रश्न यह है कि हम ईश्वर की इच्छा के शुभ या अशुभ होने का वास्तविक ज्ञान कैसे प्राप्त कर सकते हैं और ज्ञान की सत्यता की परीक्षा कैसे कर सकते हैं? कठिन सवालों के सन्तोषप्रद उत्तर के अभाव में नैतिकता को ईश्वरीय इच्छा अथवा आदेश पर आधारित नहीं माना जा सकता और उनका कोई सर्वमान्य एवं निश्चित उत्तर देना लगभग सम्भव नहीं है।

जहाँ तक हमें मालूम है कि किसी भी धर्म परायण विचारक ने इन प्रश्नों का कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया। अत: स्पष्ट है कि नैतिकता किसी भी दृष्टि से ईश्वरीय इच्छा अथवा आदेश पर निर्भर नहीं है तथा नीतिशास्त्र धर्म से पूर्णत: पृथक और स्वतन्त्र विज्ञान है।

3. **मनोविज्ञान और नीतिशास्त्र** (Psychology and Ethics)—मानसिक क्रियाओं के अध्ययन करने वाले विज्ञान को मनोविज्ञान कहा जाता है। कुछ दार्शनिक मनोविज्ञान को नीतिशास्त्र का मूल आधार मानते हैं क्योंकि नीतिशास्त्र मनुष्य के जिन ऐच्छिक कर्मों के बारे में निर्णय देता है, मनोविज्ञान उन कर्मों के स्वरूप तथा उनकी प्रतिक्रियाओं पर विचार करता है। ऐच्छिक कर्मों का ठीक-ठीक मूल्यांकन करने के लिए यह समझना आवश्यक है कि ये कर्म क्या है? और हम इन्हें कैसे करते हैं ? मनोविज्ञान के अन्तर्गत देखना, सुनना, बोलना,

कॉपीराइट की गई सामग्री

सीखना, आदि क्रियाओं के विषय में जानकारी लेते हैं। इसके अध्ययन से हम यह भी जान सकते हैं कि हर्ष, शोक, प्रेम, क्रोध, भय, ईर्ष्या आदि संवेगों का स्वरूप क्या है? और हम इन्हें कैसे अनुभव कर सकते हैं ?

उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि मनोविज्ञान का उद्देश्य हमें मनुष्य के स्वभाव, उसकी सम्भावनाओं तथा सीमाओं का ठीक-ठाक ज्ञान कराना है। मानव स्वभाव का यह सम्पूर्ण वास्तविक ज्ञान नीतिशास्त्र के लिए अनिवार्य है क्योंकि इसके अभाव में हम मनुष्य के चरित्र तथा कर्मों के सम्बन्ध में तर्कसंगत नैतिक निर्णय नहीं दे सकते। जब तक हम ठीक ठाक ये न समझ लें कि क्या सम्भव है और क्या निरर्थक ? हमें कैसे और क्या करना चाहिए ? अनेक विचारकों ने मनुष्य की वास्तविक इच्छाओं तथा उसके स्वभाव के आधार पर ही अपने नैतिक सिद्धान्तों का निरूपण किया है।

उदाहरणतया—सुखवादियों के मतानुसार सुख ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है क्योंकि सभी मनुष्य वास्तव में हमेशा सुख की कामना करते हैं व दु:ख से बचने का प्रयास करते हैं। इसके विपरीत मनुष्य एक बुद्धि-जीवी प्राणी है इस सम्बन्ध में बुद्धिवादियों ने यह कहा है कि मानव जीवन का परम लक्ष्य अपनी सभी सम्भावनाओं का दमन करके सदैव बुद्धिसंगत जीवन व्यतीत करना है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि अनेक नैतिक सिद्धान्त मानव-जीवन के सम्बन्ध में दार्शनिकों की अलग-अलग परिकल्पनाओं पर आधारित है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मनोविज्ञान नीतिशास्त्र का मुख्य आधार है तथा इन दोनों में बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है।

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि नीतिशास्त्र मनोविज्ञान की शाखा मात्र है। इस प्रकार दोनों घनिष्ठता होते हुए भी एक-दूसरे से स्वतन्त्र और अलग हैं। इसके विपरीत मनोविज्ञान वर्णनात्मक विज्ञान है, अत: इसका उद्देश्य हमें यह बताता है कि हम वास्तव में कैसे और क्या करते हैं और क्या कर सकते हैं ? ये हमारे कर्मों का मूल्यांकन तथा कर्त्तव्यों का निर्धारण नहीं करता। मनोविज्ञान तथा नीतिशास्त्र में मौलिक भेद है। मनोविज्ञान का क्षेत्र नीतिशास्त्र से अधिक व्यापक है। जैसाकि पहले भी ज्ञात को चुका है कि नीतिशास्त्र केवल समाज में रहने वाले सामान्य मनुष्यों के चरित्र तथा उनके कर्मों के विषय में निर्णय देकर उसका मूल्यांकन करता है, अत: उसका सम्बन्ध मानव जीवन की क्रियाओं से है। लेकिन मनोविज्ञान मानव जीवन के क्रियात्मक पक्ष के साथ-साथ उसके ज्ञानात्मक तथा भावानात्मक पक्ष का भी अध्ययन करता है। वह सामान्य-असामान्य, शिशु, बालक, रोगी, युवा, प्रतिभाशाली व्यक्ति आदि का अध्ययन करता है। इससे प्रमाणित होता है कि मनोविज्ञान का क्षेत्र, नीतिशास्त्र की अपेक्षा अधिक विस्तृत है।

वर्णनात्मक विज्ञान होने के साथ-साथ मनोविज्ञान प्रयोगात्मक विधि का भी प्रयोग करता है। लेकिन आदर्श मूलक विज्ञान होने के कारण नीतिशास्त्र मानवीय कर्मों के मूल्यांकन तथा कर्त्तव्यों के निर्धारण के लिए इस वैज्ञानिक विधि का प्रयोग नहीं कर सकता।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नीतिशास्त्र तथा मनोविज्ञान में घनिष्ठ सम्बन्ध होने के साथ-साथ पर्याप्त पृथकता भी है।

4. **राजनीतिशास्त्र और नीतिशास्त्र** (Politics and Ethics)—नीतिशास्त्र का अन्य विज्ञानों की भाँति राजनीतिशास्त्र से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि दोनों के अध्ययन का विषय मानव कल्याण के लिए मनुष्य के व्यवहार को नियन्त्रित करने से सम्बन्धित है। राजनीतिशास्त्र वह विज्ञान है जिसमें राज्य तथा सरकार की रचना उनके नियमों, कार्यों तथा उद्देश्यों का व्यवस्थित रूप से अध्ययन किया जाता है। यह हमें बताता है कि राज्य का उद्‌गम व विकास क्यों और कैसे हुआ? सरकार स्वरूप क्या है और उसका निर्माण कैसे होता है? सरकार के मुख्य कार्य क्या हैं और व्यक्ति एवं समाज के लिए उनका क्या महत्व है? संक्षेप में सरकार तथा राज्य से सम्बन्धित सभी समस्याओं का अध्ययन रानजीतिशास्त्र में ही किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि राजनीतिकशास्त्र मानव के राजनैतिक संगठन से सम्बन्ध है। इसका मुख्य उद्देश्य मनुष्य की समाज विरोधी इच्छाओं तथा स्वार्थ मूलक प्रवृत्तियों को नियन्त्रित करके समाज में समुचित व्यवस्था, सुरक्षा एवं शान्ति बनाये रखना ही होता है। समाज में पर्याप्त सुरक्षा, शान्ति एवं व्यवस्था में बिना कोई मनुष्य निर्भय होकर अपने कार्य को अच्छी तरह से सम्पन्न नहीं कर सकता। मनुष्य का नैतिक जीवन भी इससे अछूता नहीं है। यदि समाज सब जगह अशान्ति, अव्यवस्था, असुरक्षा व्याप्त है तो व्यक्ति के लिए नैतिक नियमों एवं आदर्शों के अनुसार आचरण करना आसान नहीं हो जाता है।

अनेक विचारकों ने तो नैतिक नियमों को भी राजनैतिक व्यवस्था का साधन मात्र माना है, अत: उनके विचारानुसार नीतिशास्त्र राजनीतिशास्त्र का एक भाग है। इसी प्रकार नीतिशास्त्र भी राजनैतिक नियमों तथा संस्थाओं के औचित्य के सम्बन्ध में नैतिक आदर्शों के आधार पर निर्णय देकर उनका मूल्यांकन करता है। इससे

कॉपीराइट की गई सामग्री

हमें ज्ञात होता है कि मानव दृष्टि से कौन-सी राजनैतिक संस्थाएँ शुभ अथवा अशुभ हैं ? राज्य द्वारा बनाये गये कौन से नियम उचित हैं और कौन अनुचित।

चाणक्य तथा मैकियावली जैसे विचारकों ने राजनीति को नैतिकता से अलग रखने का समर्थन किया है, फिर भी अधिकतर दार्शनिकों के अनुसार, राजनीति उन नैतिक आदर्शों द्वारा शासित एवं निर्धारित हो जिनकी स्थापना समस्त मनुष्य जाति के कल्याण को ध्यान में रखकर की गयी है, किसी समुदाय विशेष के हित को ध्यान में रखकर नहीं। इसी कारण रस्किन तथा महात्मा गाँधी जैसे अनेक विचारक नीतिशास्त्र को ही राजनीतिशास्त्र का पथ प्रदर्शक व आधार मानते हैं। फलस्वरूप राजनीतिशास्त्र को ही राजनीतिशास्त्र का अन्तिम उद्देश्य एक ही है और वह है मानव कल्याण की समस्या का समाधान। इस प्रकार इन दोनों में गहरा सम्बन्ध है।

राजनीति के नियमों को बाह्यरोपित तथा नैतिक नियमों को आत्मारोपित कहा जाता है। इन दोनों शास्त्रों में तीसरा महत्वपूर्ण अन्तर है कि राजनीतिशास्त्र मुख्यत: मनुष्य के सामूहिक जीवन से सम्बन्धित है, जबकि नीतिशास्त्र का सम्बन्ध मूलत: मानव के व्यक्तिगत जीवन से ही है।

इस प्रकार नैतिक नियमों का क्षेत्र राजनीतिक नियमों के क्षेत्र की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक है। इससे स्पष्ट होता है कि राजनीतिशास्त्र तथा नीतिशास्त्र आपस में सम्बद्ध होते हुए भी एक-दूसरे से स्वतन्त्र विज्ञान हैं।

5. **तत्व मीमांसा और नीतिशास्त्र** (Mataphysics and Ethics)—तत्व मीमांसा तथा नीतिशास्त्र दोनों ही दर्शनशास्त्र की महत्वपूर्ण शाखाएँ हैं। इस प्रकार इन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। तत्व मीमांसा के अन्तर्गत प्रकृति, ईश्वर, आत्मा, मनुष्य तथा संसार का सम्बद्ध, उसका स्वरूप व उद्देश्य उसकी रचना तथा परमसत्ता आदि विषयों से सम्बन्धित सवालों के उत्तर खोजने का प्रयत्न किया जाता है। जिसे प्रकृति कहते हैं हम वह वास्तव में क्या है? आत्मा तथा ईश्वर का अस्तित्व क्या है? यदि हाँ, तब कहा जा सकता है कि इनका स्वरूप एवं सम्बन्ध क्या है? मनुष्य व संसार का आपस में सम्बद्ध क्या है? मृत्यु के पश्चात् प्राणी के शरीर के विनाश के साथ ही क्या सब कुछ खत्म हो जाता है? क्या प्राणी के पुनर्जन्म की कोई सम्भावना है? क्या जीवन की उत्पत्ति का सचमुच कोई लक्ष्य है अथवा वह कोई उद्देशीय प्राकृतिक घटना मात्र है। ये सभी सवाल तत्व मीमांसा के बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न हैं। अत: अलग-अलग विचारकों ने अलग-अलग सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं। इन दार्शनिक सिद्धान्तों का नीतिशास्त्र पर बहुत प्रभाव पड़ता है इन सिद्धान्तों के आधार पर कोई दार्शनिकों ने मानव-जीवन के लिए भिन्न-भिन्न नैतिक आदर्शों का प्रतिपादन किया है। उदाहरणार्थ—भौतिकवादियों और अध्यात्मवादियों में नैतिक मानदण्डों एवं आदर्शों में मौलिक भेद हैं। भौतिकवादी जड़ पदार्थ को ही विश्व की परमसत्ता मानते हैं और ईश्वर तथा आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। उनक मत के अनुसार प्राणी की मृत्यु के पश्चात् उसमें कुछ भी शेष नहीं बचता। अत: पुनर्जन्म का होने का सवाल ही नहीं उठता।

अपने इसी दार्शनिक सिद्धान्त के आधार पर वे सुख को ही मानव जीवन का भी अन्तिम लक्ष्य मानते हैं। उनका विचार है कि मानव को अधिक से अधिक सुख प्राप्त करने के साधन जुटाना चाहिए क्योंकि इस जीवन के साथ ही सब कुछ हमेशा-हमेशा के लिए खत्म हो जाता है।

भारत में चार्वाक मत के और पाश्चात्य देशों में अनेक भौतिकवादियों ने इसी सुख वाद समर्थन किया है। लेकिन अध्यात्मवादी मानव जीवन के लिए सुख की अपेक्षा आध्यात्मिक उन्नति को ही अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं क्योंकि उनके अनुसार संसार की परमसत्ता अध्यात्मिक है और वे ईश्वर की सत्ता में आस्था रखते हैं।

उनके विचार में मनुष्य को सुख के लिए नहीं बल्कि अपनी आत्मा के उत्थान के लिए ही प्रयत्नशील रहना चाहिए। स्पष्ट है कि अध्यात्मवादियों का नैतिक दर्शन भौतिकवादी नैतिक दर्शन से पृथक् है और इसका मुख्य कारण है उसकी तत्व मीमांसा तथा सम्बन्धी सिद्धान्तों में भिन्नता। अत: तत्व मीमांसा तथा नीतिशास्त्र में गहरा सम्बन्ध है। दोनों ही दर्शनशास्त्र की शाखाएँ हैं। जैसा कि ज्ञात किया जा चुका है कि नीतिशास्त्र का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को शुभ-अशुभ और उचित व अनुचित का सही ज्ञान कराना है, जबकि तत्व मीमांसा का ध्येय समस्त विश्व के स्वरूप, उसकी निर्माण प्रक्रिया तथा परमसत्ता से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर निकालना है।

इसी कारण तत्व मीमांसा केवल सैद्धान्तिक विज्ञान है, जबकि नीतिशास्त्र को सैद्धान्तिक विज्ञान के साथ-साथ बहुधा व्यावहारिक विज्ञान की संज्ञा भी दी जाती है। इन दोनों के क्षेत्र तथा उद्देश्य में उपर्युक्त भिन्नताओं को ध्यान में रखकर ही अधिकांश दार्शनिक नीतिशास्त्र का तत्व मीमांसा से घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकारते हैं तथा उसे तत्व मीमांसा से अलग एक स्वतन्त्र विज्ञान ही मानते हैं।

कॉपीराइट की गई सामग्री

परीक्षोपयोगी प्रश्न

(I) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. नीतिशास्त्र की अवधारणा स्पष्ट कीजिए एवं अन्य शास्त्रों से इसके सम्बन्ध पर प्रकाश डालिए।
2. समाशास्त्र की प्रकृति की विवेचना कीजिए एवं नीतिशास्त्र से इसके सम्बन्धों की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
3. ''नीतिशास्त्र सामान्य रूप से मनुष्यों के ऐच्छिक कर्मों का मूल्यांकन करता है।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।
4. ''नीतिशास्त्र अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु समाजशास्त्र से पर्याप्त सहायता लेता है।'' व्याख्या कीजिए।
5. धर्म की व्याख्या कीजिए एवं धर्म एव नीतिशास्त्र में सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।
6. कुछ दार्शनिक नीतिशास्त्र को धर्म का केवल एक भाग मानकर उसके स्वतन्त्र अस्तित्व को नहीं स्वीकारते इस सन्दर्भ में अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।
7. कार्लबार्थ के कथनानुसार ''मैं तथा कथित नीतिशास्त्र को ईश्वरीय आदेश के रूप में देखता है।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।
8. ''जिस व्यक्ति पर ईश्वर की कृपा होती है वह सत्य को जान सकता है?'' अपने विचारों में स्पष्ट कीजिए।
9. मनोविज्ञान की प्रकृति स्पष्ट करते हुए मनोविज्ञान एवं नीतिशास्त्र के सम्बन्धों की पर प्रकाश डालिए।
10. राजनीतिशास्त्र की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए नीतिशास्त्र के राजनीतिक सम्बन्धों की सीमा की विवेचना कीजिए।
11. तत्व मीमांसा एवं नीतिशास्त्र दोनों एक-दूसरे के किस प्रकार पूरक हैं? इस विषय पर प्रकाश डालिए।

(II) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. नीतिशास्त्र की प्रकृति स्पष्ट कीजिए।
2. तत्व मीमांसा केवल सैद्धान्तिक विज्ञान है। स्पष्ट कीजिए।
3. धर्म की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
4. मनोविज्ञान किस प्रकार नीतिशास्त्र से जुड़ा है? संक्षेप में बताइए।
5. समाजशास्त्र के बिना नीतिशास्त्र अधूरा है स्पष्ट कीजिए।
6. राजनीतिशास्त्र को नीतिशास्त्र के दृष्टिकोण से स्पष्ट कीजिए।
7. शुभ-अशुभ की परिभाषा दीजिए।
8. मनोविज्ञान मानव की क्रियाओं का किस प्रकार अध्ययन करता है?
9. नैतिक नियम राजनैतिक व्यवस्था के किस प्रकार साधन मात्र है? बताइए।
10. तत्व मीमांसा की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
11. मनुष्य की विश्व का परस्पर सम्बन्ध क्या है? स्पष्ट कीजिए।

(III) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

(A) बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. नीतिशास्त्र मनुष्यों के उन्हीं ऐच्छिक कर्मों का अध्ययन करता है जो सम्बन्धित होते हैं–
   (i) धार्मिक जीवन से (ii) सामाजिक जीवन से
   (iii) मानसिक जीवन से (iv) उपर्युक्त में से कोई नहीं।
2. मनुष्य के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित समस्त तथ्यों का वैज्ञानिक अध्ययन करना मुख्य उद्देश्य है–
   (i) समाजशास्त्र का (ii) मानवशास्त्र का
   (iii) राजनीतिशास्त्र का (iv) अर्थशास्त्र का।
3. समाजशास्त्री यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाकर वैज्ञानिक अध्ययन करते हैं–
   (i) आदर्शों का (ii) नैतिक नियमों का
   (iii) नैतिक आचरणों का (iv) उपर्युक्त सभी का।
4. समाजशास्त्र का कार्य मानव के सामाजिक जीवन का ही नहीं अपितु वर्णन करना भी है–
   (i) तथ्यात्मक तत्वों का (ii) विश्लेषणात्मक तथ्यों का
   (iii) मानव के नैतिक मूल्यों का (iv) उपर्युक्त सभी का।

कॉपीराइट की गई सामग्री

5. धर्म एवं नीतिशास्त्र के सम्बन्धों में मूल रूप से भिन्नता है–
   (i) मौलिक (ii) अमौलिक
   (iii) दार्शनिक (iv) उपर्युक्त में से कोई नहीं।
6. दैवीय शक्ति में मनुष्य की जड़ आस्था ही है–
   (i) संस्कृति का मूल्य आधार (ii) धर्म का मूल अधिकार
   (iii) नैतिकता का मूल आधार (iv) उपर्युक्त में से कोई नहीं।
7. धर्म का सम्बन्ध मानव की बुद्धि से ही नहीं वरन् अन्य से भी है–
   (i) कर्म (ii) भावना
   (iii) नैतिकता (iv) उपर्युक्त सभी।
8. कार्ल बार्थ, रैन होल्डर एमिल एवं बूनर आदि स्वीकार नहीं करते–
   (i) धर्म का स्वतन्त्र अस्तित्व (ii) धर्म का परतन्त्र अस्तित्व
   (iii) नैतिक धर्माचरण (iv) आशक्ति अनाशक्ति

   [**उत्तर**–1. (ii), 2. (i), 3. (iv), 4. (iv), 5. (i), 6. (ii), 7. (iv), 8. (i)]

(B) **सत्य/असत्य बताइए** (Write True or False)

1. नैतिक दृष्टि से कर्म मनुष्यों को प्रभावित करने के कारण ही शुभ-अशुभ माने जाते हैं।
2. शुभ-अशुभ के कर्त्तव्य ज्ञान हेतु किसी दैवीय शक्ति के विश्वास की आवश्यकता होती है।
3. नैतिकता को ईश्वरीयता से मान लेने पर अनेक बार कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं।
4. पुरस्कार का लोभ अथवा दण्ड का भय सच्ची मौलिकता पर आधारित होता है।
5. मानव किसी बाहरी कारण से विवश न होकर वरन् स्वयं अपनी इच्छानुसार ही नैतिक नियमों का पालन करता है।
6. सच्ची नैतिकता ईश्वरीय अथवा बाहरी शक्ति पर आधारित न होकर वरन् सदैव आत्मारोपित होती है।
7. स्वास्थागत समस्याओं के नैदानिक विज्ञान को मनोविज्ञान की श्रेणी में रखा गया है।
8. मनोविज्ञान का उद्देश्य हमें मनुष्य के स्वभाव, उसकी सम्भावनाओं एवं सीमाओं का उचित ज्ञान कराना है।

   [**उत्तर**–1. सत्य, 2. असत्य, 3. सत्य, 4. असत्य, 5. सत्य, 6. सत्य, 7. असत्य, 8. सत्य।]

(C) **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए** (Fill in the Blanks)

1. मानसिक क्रियाओं के अध्ययन करने वाले विज्ञान को..................कहा जाता है।
2. वर्णनात्मक विज्ञान होने के साथ-साथ मनोविज्ञान..................का भी प्रयोग करता है।
3. मनोविज्ञान का क्षेत्र नीतिशास्त्र की अपेक्षा..................है।
4. मनोविज्ञान मानव जीवन के..................का भी अध्ययन करता है।
5. नीतिशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र दोनों का विषय..................से सम्बन्धित है।
6. ....एवं..................गतिविधियों से सम्बन्धित समस्त अध्ययन राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत होता है।
7. अनेक विचारकों ने तो नैतिक नियमों को भी..................का साधन मात्र माना है।
8. राजनीतिशास्त्र का सम्बन्ध मनुष्य के..................से जबकि नीतिशास्त्र का सम्बन्ध मनुष्य के..................से सम्बन्धित है।

   [**उत्तर**–1. मनोविज्ञान, 2. प्रयोगात्मक विधि, 3. अधिक विस्तृत, 4. क्रियात्मक पक्ष, 5. मानव कल्याण, 6. सरकार, राज्य की, 7. राजनैतिक व्यवस्था, 8. सामूहिक जीवन, व्यक्तिगत जीवन।]

(D) **मिलान कीजिए** (Match the Following)

1. राजनैतिक परिदृश्य का अध्ययन	(i) दर्शनशास्त्र की
2. सामाजिक जीवन सम्बन्धी तथ्यों का अध्ययन	(ii) नीतिशास्त्र
3. आदर्शमूलक आचरणों का अध्ययन	(iii) समाजशास्त्र
4. तत्व मीमांसा शाखा है	(iv) व्यावहारिक विज्ञान भी है
5. नीतिशास्त्र एक	(v) राजनीतिशास्त्र
6. ईश्वरीय कृपा है	(vi) सत्य का ज्ञान

[**उत्तर**–1. (v), 2. (iii), 3. (ii), 4. (i), 5. (iv), 6. (vi)]

◆

कॉपीराइट की गई सामग्री

अध्याय 4

नीतिशास्त्र की पद्धतियाँ

[METHODS OF ETHICS]

नीतिशास्त्र का मूल उद्देश्य है—मानव नीति का आदर्श स्थापित करना अर्थात् मानव नीति का रूप कैसा होना चाहिए ? इसमें मानव की इच्छा, आचरण एवं रीति आदि सम्मिलित रहते हैं। इसे मनोवैज्ञानिक या आगमनात्मक (Inductive) रीति कहा जाता है जोकि मानव से जुड़े इन्हीं तत्वों की खोज कुछ आदर्श-विधियों द्वारा करती है इन्हें पद्धतियाँ, रीति, तरीका या विधियाँ आदि नामों से भी जाना जाता है। दूसरी रीति से अभिप्राय भौतिक अथवा सांसारिक दृष्टिकोण के आधार पर मानव-आदर्श को निरूपित किया जाए इसे मनोवैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता या फिर निगमनात्मक (Deductive) रीति कहा जाता है। इन पद्धतियों की चर्चा निम्न प्रकार से की जा सकती है—

नीतिशास्त्र की पद्धतियाँ दो होती हैं—

(अ) **मनोवैज्ञानिक पद्धति या आगमनात्मक रीति** (Psychological Method or Inductive Method)—इस विधि के द्वारा आचरण का विश्लेषण कर उसके आधार पर ही आदर्श का स्थापन किया जाता है। इसलिए इस विधि को विश्लेषणात्मक विधि भी कहा जाता है। जैसा कि उपर्युक्त विवरण में स्पष्ट किया गया है कि मनुष्य का लक्ष्य क्या है ? इसका विश्लेषण मनोवैज्ञानिक ढंग से करके पता लगाया जाता है। सुखवादियों (Hedonists) ने इस विधि का प्रयोग करके ज्ञात किया कि मनुष्य का मुख्य उद्देश्य सुख की प्राप्ति है इसलिए सुख ही जीवन का आदर्श है।

अन्त:अनुभूतिवादियों के अनुसार प्रत्येक मनुष्य में विवेक बुद्धि होती है जो उसे धर्म एवं अधर्म की संज्ञा का ज्ञान कराती है दूसरे शब्दों में, वे इसे अन्तरदृष्टि (Intention) के आधार पर नैतिक एवं अनैतिक का निर्णायक मानते हैं। काण्ट भी इस नीति के पालक हैं। उनके अनुसार मनुष्य की प्रज्ञा (Reason) उसके कर्मों के नैतिक मूल्य का द्योतक है। इसी प्रकार बटलर, मानव प्रकृति को ही नैतिकता का आधार मानते हैं। निष्कर्षत: सुखवाद (Hedonism), अन्त:अनुभूतिवाद (Intitutionism) एवं काण्ट के कठोरवाद (Rigorism) में मनोवैज्ञानिक प्रकृति को आधार माना गया है।

(ब) **अमनोवैज्ञानिक पद्धति या निगमनात्मक रीति** (Non-Psychological Method or Deductive Method)—इस विधि में अनुभव के आधार पर आदेश का ज्ञान नहीं होता वरन् बुद्धि के द्वारा होता है इसीलिए इसे अनुभवातीत विधि का (Transcendental Method) का नाम भी दिया गया है। मनुष्य के क्या प्रयोजन हैं इस विचार पर मानव-आदर्श का निर्धारण होता है इसलिए प्रयोजनमूलक (Teleological) भी कहा जाता है। मानव-नीति के नियमों पर विचार का आधार संसार की वास्तविकता पर ही हो सकता है इस विचार के समर्थकों में लाइब्नीत्स एवं स्पीनोजा भी हैं। इस पद्धति के भी दो भेद हैं—

(i) प्राकृतिक (Naturalistic),

(ii) दार्शनिक (Philosophical) अथवा तात्विक (Metaphysical)।

(i) **प्राकृतिक पद्धति** (Naturalistics Method)—इस पद्धति में संसार का माया-रूप या ईश्वरीय सृष्टि के रूप में नहीं स्वीकारा गया है, अपितु प्राकृतिक जड़ पदार्थों के संयोग से ही संसार की उत्पत्ति होती है। मरणोपरान्त मनुष्य का क्या होता है ? इसका कोई आधार नहीं है, उनके अनुसार शरीर का जड़ होने के कारण

कॉपीराइट की गई सामग्री

विनाश सम्भव है और आत्मा भी एक जड़ ही का रूप है, इसलिए मनुष्य का लक्ष्य उद्देश्यपरक होना चाहिए अर्थात् 'सुख' एवं 'आनन्द' की प्राप्ति। स्टीफेन की ऐतिहासिक पद्धति (Historical Method) एवं स्पेन्सर की जैविक पद्धति (Bilogical Method) प्राकृतिक रीति ही है।

(ii) **दार्शनिक पद्धति अथवा तात्विक पद्धति** (Philosophical or Metaphysical Method)—प्लेटो, ग्रीन, अरस्तु एवं हेगेल के नीति सम्बन्धी विचारों का आधार है कि तत्व-सम्बन्धी विचारों के कारण ही मानव-आदर्शों का प्रतिपादन हो सकता है। हेगेल का कहना है कि तत्व (Reality) केवल एक है एवं अन्य आत्माएँ उसी के प्रतिरूप हैं। मानव आत्मा अपूर्ण है इसलिए पूर्णता (Perfection) की प्राप्ति ही मनुष्य का मात्र उद्देश्य होना चाहिए एवं यही उसका दार्शनिक आधार भी है।

(स) **वास्तविक पद्धति** (Real Method)—मानव-जीवन का सत्य आदर्श बताने में कौन-सी पद्धति सर्वाधिक उपयुक्त है जिससे मनुष्य के आचरण का नैतिक मूल्यांकन किया जा सके। किसी भी आदर्श के निरूपण में हमारा मुख्य उद्देश्य होता है कि उस वस्तु को कैसा होना चाहिए और यह तब ही सम्भव है जबकि उस पदार्थ का वास्तविक स्वरूप हो। जीवन का आदर्श सदैव सत्य पर आधारित नहीं होता इसलिए मनोवैज्ञानिक एवं अमनोवैज्ञानिक पद्धतियों को ही सही नहीं मान लेना चाहिए। जीवन का आदर्श ऐसा होना चाहिए, जो प्राप्त किया जा सके और इसके लिए वास्तविक प्रकृति का ज्ञान होना परमावश्यक है। हमारे कर्मों की वास्तविकता क्या है, यह ज्ञात करके हम कह सकते हैं कि किसी आदर्श को हम प्राप्त कर सकते हैं या नहीं। इसलिए बिना मनुष्य के आचरण की परीक्षा किये बिना ही किसी दार्शनिक दृष्टि को आधार मानकर आदर्श की स्थापना नहीं की जा सकती। जीवन की वास्तविक आदर्शत्मक स्थिति वही है जिसकी प्राप्ति हो सके यह बात मनुष्य के आचरण द्वारा जानी जा सकती है, अत: यहाँ पर मनोवैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करना उचित होगा। इसके अतिरिक्त मनुष्य का आचरण किस उद्देश्य से है, हमें क्या करना चाहिए इस विचार के कारण अमनोवैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जा सकता है। अत: निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मनुष्य के लक्ष्य एवं उसके आचरण को पता करने के लिए दोनों ही पद्धतियों का प्रयोग आवश्यक है ताकि जीवन का सत्य आदर्श निश्चित किया जा सके।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

(I) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. मानव-आदर्श की खोज में प्रयोग की जाने वाली विधियाँ ही पद्धतियाँ कहलाती हैं। समझाइए।
2. नीतिशास्त्र की पद्धति क्या है? आपके विचारानुसार नीतिशास्त्र की वास्तविक पद्धति क्या होना चाहिए? स्पष्ट कीजिए।
3. क्या यह कहना उचित है कि नीतिशास्त्र की पद्धति वैज्ञानिक होने की अपेक्षा दार्शनिक है? स्पष्ट कीजिए।
4. नीतिशास्त्र की कौन-सी विधि आचरण के परीक्षण में प्रयोग की जाती है? प्रकाश डालिए।
5. मनोवैज्ञानिक पद्धति से क्या अभिप्राय है? मनुष्य की मानसिक क्रियाओं से इसका क्या सम्बन्ध है?
6. अमनोवैज्ञानिक पद्धति के कौन-से भेद हैं? स्पष्ट कीजिए।
7. मनोवैज्ञानिक एवं अमनोवैज्ञानिक पद्धति में भेद स्पष्ट कीजिए।
8. नीतिशास्त्र की पद्धतियों का वर्गीकरण कीजिए और उनमें नैतिक अन्वेषण के लिए कौन उपयुक्त है, इसकी व्याख्या कीजिए।

(II) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. नीतिशास्त्र की पद्धतियों से क्या अभिप्राय है?
2. सुखवादियों ने किस पद्धति का पालन किया है?
3. प्राकृतिक पद्धति समझाइए।
4. दार्शनिक अथवा तात्विक पद्धति को स्पष्ट कीजिए।
5. नीतिशास्त्र की वास्तविक रीति क्या है?
6. विश्लेषणात्मक पद्धति अथवा रीति क्या है? समझाइए।

कॉपीराइट की गई सामग्री

(III) **वस्तुनिष्ठ प्रश्न** (Objective Type Questions)

(A) **बहुविकल्पीय प्रश्न** (Multiple Choice Questions)

1. पद्धति का वास्तविक अर्थ है–
   (i) रीति (ii) व्यवहार
   (iii) अनुपालन (iv) संयोग
2. नीतिशास्त्र का लक्ष्य है–
   (i) मानव-व्यवहार निर्माण करना (ii) मानव-संवेदना उजागर करना
   (iii) मानव-आदर्श निश्चित करना (iv) उपर्युक्त में कोई नहीं
3. मनुष्य के आचरण से सम्बन्धित पद्धति कौन-सी है।
   (i) अमनोवैज्ञानिक पद्धति (ii) मनोवैज्ञानिक पद्धति
   (iii) वास्तविक पद्धति (iv) उपर्युक्त में कोई नहीं
4. मनोवैज्ञानिक पद्धति को इस नाम से भी जाना जाता है–
   (i) निगमनात्मक पद्धति (ii) प्राकृतिक पद्धति
   (iii) आगमनात्मक पद्धति (iv) दार्शनिक पद्धति
5. संसार सम्बन्धी किसी दृष्टिकोण के आधार पर मानव आदर्श के निरूपण सम्बन्धी विधि है–
   (i) मनोवैज्ञानिक पद्धति (ii) प्रयोजनात्मक रीति
   (iii) अमनोवैज्ञानिक विधि (iv) विश्लेषणात्मक रीति
6. मनोवैज्ञानिक रीति का पालन किया है–
   (i) सुखवादियों ने (ii) अनुभववादियों ने
   (iii) नियोजनवादियों ने (iv) उपर्युक्त में कोई नहीं
7. अमनोवैज्ञानिक विधि को इस नाम से भी जाना जाता है–
   (i) आगमनात्मक पद्धति (ii) निगमनात्मक पद्धति
   (iii) वास्तविक पद्धति (iv) उपर्युक्त में कोई नहीं
8. मनोवैज्ञानिक पद्धति का अन्य नाम है–
   (i) आगमनात्मक विधि (ii) परीक्षात्मक विधि
   (iii) विश्लेषणात्मक रीति (iv) उपर्युक्त सभी
9. मनोवैज्ञानिक रीति के द्वारा किसने अन्तरदृष्टि को नैतिक एवं अनैतिक नीति का निर्णायक बतलाया है–
   (i) सुखवादियों ने (ii) प्रयोजनवादियों ने
   (iii) अन्त:अनुभूतिवादियों ने (iv) उपर्युक्त में कोई नहीं
10. मनोवैज्ञानिक रीति का पालन करने वाले विचारक हैं–
   (i) एस. रोबर्ट (ii) स्टुअर्ट
   (iii) काण्ट (iv) सोरोकिन

[**उत्तर**–1. (i), 2. (iii), 3. (ii), 4. (iii), 5. (iii), 6. (i), 7. (ii), 8. (iv), 9. (iii), 10. (iii)।]

(B) **सत्य/असत्य बताइए** (Write True or False)

1. मनुष्य की प्रज्ञा उसके कर्मों के नैतिक मूल्य का परिचायक हैं।
2. काण्ट ने मानव प्रकृति को ही नैतिकता का आधार विचारा है।
3. सुखवाद, अन्त:अनुभूतिवाद एवं काण्ट के कठोरवाद ने मनोवैज्ञानिक पद्धति का पालन किया है।
4. मनोवैज्ञानिक पद्धति में संसार-विषयक दृष्टिकोण के आधार पर ही मानव-जीवन का आदर्श निश्चित किया जाता है।
5. मनुष्य की अपूर्णता एवं ईश्वर की अपूर्णता का आधार ही मनुष्य का लक्ष्य होना चाहिए।
6. किसी तत्व-सम्बन्धी विचार से निष्कर्ष-स्वरूप मानव आचरण का आदर्श स्थापित करना ही रीति की विशेषता है।

कॉपीराइट की गई सामग्री

7. निगमन रीति में आदर्श का ज्ञान अनुभव के द्वारा ही किया जा सकता है।
8. वास्तविक पद्धति के आधार पर ही मनोवैज्ञानिक पद्धति को प्रयोजनात्मक पद्धति कहा जाता है।

[**उत्तर**—1. सत्य, 2. असत्य, 3. सत्य, 4. असत्य, 5. सत्य, 6. सत्य, 7. सत्य, 8. असत्य।]

(C) **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए** (Fill in the Blanks)

1. ………………एवं………………की पद्धतियाँ अमनोवैज्ञानिक हैं।
2. संसार को प्राकृतिक शक्तियों का सामंजस्य विचारना ही………………है।
3. ………………ईश्वर की सृष्टि या ब्रह्म की माया का स्वरूप नहीं है।
4. बुद्धि के द्वारा किसी आदर्श का ज्ञान प्राप्त करना………………के अन्तर्गत आता है।
5. ………………का मत है कि तत्व केवल एक है और अन्य आत्माएँ उसका प्रतिरूप हैं।
6. मनुष्य का लक्ष्य………………एवं………………होना चाहिए।
7. स्टीफेन की………………ही प्राकृतिक रीति है।
8. स्पेन्सर की………………ही प्राकृतिक रीति सम्बन्धित है।

[**उत्तर**—1. स्पीनोजा, लाइबनित्ज, 2. प्रकृतिवाद 3. संसार, 4. अनुभवातीत रीति, 5. हेगेल, 6. सुख, आनन्द की प्राप्ति, 7. ऐतिहासिक पद्धति, 8. जैविक पद्धति।]

(D) **मिलान कीजिए** (Match the Following)

1.	अमनोवैज्ञानिक पद्धति के रूप हैं।	(i)	स्टुअर्ट
2.	मानव-जीवन के आदर्श की मीमांसा होती है।	(ii)	सुखवादी
3.	नीतिशास्त्र की पद्धतियों का वर्गीकरण इन्होंने भी किया है।	(iii)	तात्विक पद्धति
4.	अनुभव के द्वारा आदर्श-ज्ञान की प्राप्ति है।	(iv)	प्राकृतिक एवं दार्शनिक
5.	'मानव-आत्मा अपूर्ण है' सम्बन्धित है।	(v)	नीतिशास्त्र में
6.	मानसिक-क्रिया सम्बन्धी अध्ययन की पद्धति है।	(vi)	अनुभवातीत रीति
7.	मनोवैज्ञानिक पद्धति के पालक हैं।	(vii)	मनोवैज्ञानिक पद्धति

[**उत्तर**—1. (iv), 2. (v), 3. (i), 4. (vi), 5. (iii), 6. (vii), 7. (ii)।]

◆

कॉपीराइट की गई सामग्री

अध्याय 5

नीतिशास्त्र का मनोवैज्ञानिक आधार

[PSYCHOLOGICAL BASIS OF ETHICS]

नैतिक और नीति-शून्य कर्म (Moral and Non-moral Actions)—नीतिशास्त्र (Ethics) का लक्ष्य माख आचरण का वास्तविक आदर्श ढूँढ़ना होता है, जिसे तुलना करके कर्मों के अनौचित्य या औचित्य का निर्णय किया जाता है तथा सभी को उचित या अनुचित, पाप या पुण्य, श्रेय या अश्रेय, धर्म या अधर्म नहीं कहा जा सकता। कुछ क्रियाओं का इन शब्दों में मूल्यांकन हो सकता है, लेकिन कुछ का नहीं। यदि कोई कुत्ता किसी मनुष्य को अनायास ही काट लेता है तब उससे सम्बन्धित उसे कोई रोग हो जाता है तब हम कुत्ते को अधर्मी या पापी या उसकी क्रिया को अनुचित नहीं कहेंगे। इसी तरह की अन्य क्रियाएँ भी हैं, जिनका नैतिक निर्णय नहीं होता है। वैसी क्रियाएँ, जिनका नैतिक निर्णय हो सके अर्थात् जिन्हें उचित या अनुचित, पाप या पुण्य कहा जा सके, उन्हें नैतिक कर्म (Moral Action) कहा जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि कैसी क्रियाओं का नैतिक मूल्यांकन या निर्णय होता है ?

नैतिक निर्णय या मूल्यांकन उन क्रियाओं का किया जाता है, जिसमें नैतिक गुण अर्थात् पाप-पुण्य, उचित व अनुचित आदि का प्रश्न किया जाता है। सभी वस्तुओं में सभी प्रकार के गुण नहीं होते हैं। इस प्रकार यदि कोई पूछे कि काठ में मानवता होती है या दानवता, तब इसका कोई उत्तर नहीं होगा क्योंकि इस प्रकार के गुण काठ में नहीं होते हैं। इसी तरह नैतिक गुण भी सभी क्रियाओं में नहीं होते हैं। वास्तविकता यह है कि पाप-पुण्य अच्छा-खराब, धर्म-अधर्म, औचित्य-अनौचित्य सापेक्ष शब्द हैं। ये तो वहाँ लागू होंगे जहाँ इनके विकल्प (Alternative) हों। जिस तरह सुख-दु:ख सापेक्ष होते हैं और सुख व दु:ख का तभी कोई अर्थ निकलता है जब उनकी एक दूसरे से तुलना की जाती है, ठीक उसी प्रकार से उचित-अनुचित का तभी अर्थ होगा जब हम कोई काम करने लगें और जो करने का विचार करें, उसके अलावा हमारे सामने और भी विकल्प हों।

अपनी इच्छा से किये गये कर्मों को ऐचिछक कर्म कहा जाता है। इस प्रकार से कहा जा सकता है कि ऐच्छिक कर्मों में ही अच्छे-बुरे, उचित-अनुचित आदि का ध्यान रखा जाता है। इसलिए यही नैतिक कर्म कहे जाते हैं जिनमें ऐच्छिक कर्म होता है। जिस प्रकार से किसी घर में बिजली के गिरने से सभी मासूम बच्चों की मृत्यु हो जाती है तब उस स्थिति में उसे हम पापी या अधर्मी नहीं कह सकते, लेकिन जब हम निजी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए किसी को नुकसान पहुँचाते हैं तब हमें उस समय दुराचारी कहा जा सकता है। सभी संकल्पित कर्मों को (Willed actions) ऐच्छिक कर्म, नैतिक कर्म कहा जाता है। ऐच्छिक कर्म वह क्रिया कहलाता है, जिसे कोई आत्मचेतन प्राणी स्वतन्त्र इच्छा से साधन हेतु चुनाव करने के बाद बुद्धिमत्ता से करें। संकल्प के अभाव में होने वाली क्रिया नैतिक कर्म नहीं कही जा सकती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है ऐच्छिक कर्म के अलावा मनुष्य के अभ्यासजन्य कर्मों (Habitual actions) का भी नैतिक निर्णय किया जा सकता है। जबकि उन कर्मों का जिनको करने का अभ्यास हो चुका है, इच्छा, संकल्प या मानसिक द्वन्द्व नहीं होता है। जिस तरह से एक व्यक्ति को जिसे शराब पीने की आदत पड़ गयी है उसे शराब पीने से खरीदने पर कोई हिचकिचाहट नहीं होती है। पर फिर भी हम आदत लगने के पहले इच्छा करके मँगवाते हैं। पीछे अभ्यास हो जाता है। वैसे कर्मों के प्रारम्भ में भी इच्छा, संकल्प आदि होते हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि अभ्यासजन्य कर्म (Habitual actions) भी नैतिक कर्म होते हैं।

कॉपीराइट की गई सामग्री

नीति-शून्य कार्य (Non-moral Action)—ऐसी पहले भी हम जानकारी हासिल कर चुके हैं कि बहुत से ऐसे कर्म होते हैं, जिन्हें न पाप और न पुण्य, न धर्म न अधर्म, न उचित और न अनुचित ही कहा जा सकता है। वह सब नैतिकता के क्षेत्र के बाहर आते हैं। उनका नैतिक निर्णय नहीं किया जा सकता, इस कारण उनमें नैतिकता का अभाव पाया जाता है।

इस प्रकार के कर्म नीति शून्य कर्म कहलाते हैं। नीति शून्य का अर्थ यह नहीं कि वह कर्म खराब है। उनमें इच्छा या संकल्प का अभाव रहता है, अत: उनका नैतिक निर्णय नहीं होता है। इसी तरह के कर्मों को नीति शून्य कर्म की संज्ञा दी जाती है। संक्षेप में कहना होगा कि अनैच्छिक कर्म को नीति शून्य कर्म कहा जाता है। अब प्रश्न उठता है कि किस प्रकार के कर्म नीति शून्य होते हैं?

निर्जीव पदार्थों की क्रियाओं का नैतिक निर्णय सम्भव नहीं होता क्योंकि उनमें इच्छा का अभाव होता है। इसीलिए वे नीति शून्य कर्म कहे जाते हैं। बादल से समय पर पानी बरसने को, सूर्य से जाड़े में गर्मी होने को या गर्मी में हवा से ठण्डक होने को उचित या अनुचित, पाप या पुणय नहीं कहा जाता। अत: उनमें नैतिक गुण का अभाव रहता है।

पौधों या पशुओं की क्रियाएँ भी नीति शून्य होती हैं। उनमें भी इच्छा का अभाव रहता है, इसी कारण वह नीतशास्त्र के क्षेत्र के बाहर हैं। मनुष्य की कुछ क्रियाएँ ऐसी भी हैं, जिनमें इच्छा का अभाव होता है, इस प्रकार उनमें भी नैतिक निर्णय नहीं हो सकता। सहज (Instinctive), प्रत्यावर्तित, अनियमित व भावनाजन्य क्रियाओं में या संवेगों के स्वत: प्रकाशन में भी इच्छा का अभाव होता है। साँस लेने या पलक गिरने में मनुष्य को कोई संकल्प नहीं करना पड़ता है। इस प्रकार की क्रियाएँ स्वत: होती हैं। उनमें उद्देश्य की चेतना मनुष्य को नहीं रहती। इसीलिए वे भी नीति शून्य हैं।

मनुष्य की उन क्रियाओं को जो उसकी मानसिक विकार (Abnormality) के कारण होती हैं जैसे पागलपन व बेवकूफी वाले क्रम उचित या अनुचित नहीं कहे जा सकते। पागलपन का किसी भी नैतिक दृष्टि से मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। उन्हें अपनी किसी इच्छा या स्वयं पर कोई अधिकार नहीं रहता, इसी कारण वे अपनी क्रियाओं के लिए उत्तरदायी नहीं होते। यदि कोई पागल हत्या जैसा अपराध करता है तब उसके लिए कोई दण्ड नहीं दिया जाता।

उन मनुष्यों की क्रियाएँ भी, जिनका समाज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, नैतिक क्षेत्र के बाहर होती हैं। कोई मनुष्य समाज का अंग होता है। यदि समाज से उसका सम्बन्ध बिल्कुल नहीं है तब वह व्यक्ति की कोटि में रहता ही नहीं है।

जिन कर्मों को बलपूर्वक कराया जाता है वह भी नैतिकता की श्रेणी में नहीं आते हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि ऐसे कर्म तभी वास्तविकता में नीति शून्य होंगे जब उनके प्रतिरोध की शक्ति उसमें नहीं होगी। यदि कोई बालक किसी बात को हठ करके किसी बड़े (वयस्क) से पूरी करवा लेता है तब उस वयस्क के आचरण को नीति शून्य नहीं कहा जा सकता, इसीलिए कि उसका प्रतिरोध करना सम्भव था।

इस प्रकार से सम्मोहित अवस्था में दिये गये आदेशों (Hypnatic Suggestion) के परिणामस्वरूप यदि कोई कर्म किया जाता है तब वह भी नीति शून्य होता है। उस अवस्था में मनुष्य में न तो आत्मचेतना रहती है, न ही स्वतन्त्र इच्छा व न ही साध्य-साधन का चुनाव ही होता है।

नैतिक शब्द का अर्थ—'नैतिक' शब्द तीन अर्थों में व्यवहृत होता है। भाषा में इसे 'मानसिक' का पर्यायवाची शब्द माना जाता है। वह जो भौतिक (Physical) या शारीरिक नहीं है वह नैतिक कहलाता है। यही 'नैतिक' शब्द का विस्तृत अर्थ कहलाता है।

साधारण रूप से नैतिक दृष्टि से जो अच्छा होता है वह नैतिक कहा जाता है और इसके विपरीत अनैतिक होता है। यह नैतिक शब्द का सीमित अर्थ हुआ।

लेकिन नीतिशास्त्र में 'नैतिक' शब्द का अर्थ भिन्न होता है। ऐसी क्रियाएँ जिनका नैतिक निर्णय हो सकता है, नैतिक कहलाती है। इसलिए वह कर्म जो नैतिक होते हैं उचित व अनुचित हो सकते हैं। इसी अर्थ में 'नैतिक' शब्द का नीतिशास्त्र में प्रयोग होता है। यह नैतिक शब्द का संकुचित अर्थ हुआ।

ऐच्छिक कर्म (Voliuntary Action)—मानव जीवन का आदर्श क्या है ? उसका आदर्श आचरण क्या है ? इसका विवेचन करना ही नीतिशास्त्र का मुख्य उद्देश्य है। लेकिन किसी भी वस्तु के विषय में, उसके आदर्श की समीक्षा करने से पूर्व उस पदार्थ के स्वरूप को जान लेना आवश्यक होता है। इसी प्रकार यह जानने के पहले कि आचरण कैसा होना चाहिए ? 'ऐच्छिक क्रिया क्या हैं ?' से भिन्न हो जाना आवश्यक है अर्थात् कोई कर्म

कॉपीराइट की गई सामग्री

करने के पूर्व मस्तिष्क में कौन-सी बातें आती है? शारीरिक क्रिया कब शुरू होती है, आदि से। वास्तविकता यह है कि यह विषय मनोविज्ञान का है। इसीलिए इसे नीतिशास्त्र का मनोविज्ञानिक आधार कहा जाता है। अत: अब हम ऐच्छिक कर्म का विश्लेषण करेंगे।

ऐच्छिक कर्म का विश्लेषण (Analysis of Volunatary Action)—जब कोई आत्मचेतन पुरुष स्वतन्त्र रूप से संकल्प करके कोई ऐसा कर्म करता हो, जिसके साधन व हेतु का उसे पहले से ही पूर्व-ज्ञान हो तब वह क्रिया ऐच्छिक कही जाती है। माना कि किसी विद्यार्थी को कक्षा में पढ़ाई के वक्त असह्य प्यास लगी हो वह दुविधा में पड़ जाता है। कभी वह सोचता है कि शिक्षक की आज्ञा लेकर पानी पी आयें और कभी यह कि क्लास समाप्त होने पर ही वह उठे। अन्तत: वह विचार कर उसी समय जाने का संकल्प कर लेता है और आज्ञा लेकर पानी पी आता है। उसने बाहर जाकर पानी पीने की इच्छा जाहिर की। इस प्रकार इसमें उसका संकल्प छिपा रहता है। वह कैसे और किस लिए जायेगा? इस बात की भी उसे पूरी चेतना है। वह स्वतन्त्र व आत्मचेतन प्राणी है। उसकी यह क्रिया ऐच्छिक कर्म कहीं जायेगी।

प्राथमिकता इस बात की है कि व्यक्ति जब भी कोई कार्य अपनी इच्छा से करता है तब उसे किसी-न-किसी वस्तु की आवश्यकता अवश्य ही होती है। वह किसी-न-किसी वस्तु का अभाव महसूस करता है और वह उसे पूरा करने में लग जाता है। यदि उसको पाने में कोई अड़चन या दुविधा होती है तब उस पर वह सोच-विचार करके उसे पाने का साधन सोचता है और अन्त में जो वह साधन सोचता है उसी के द्वारा उस पदार्थ को प्राप्त करने का संकल्प (Will) करता है। जिस प्रकार से हमने ऊपर एक उदाहरण के द्वारा बताया था कि प्यास महसूस करने पर ही पानी पीने का विचार आता है। क्लास से उठकर जायें या न जायें इस तरह की दुविधा होती है और अन्त में सोच-विचार कर आज्ञा लेकर पानी पी आने का वह विद्यार्थी संकल्प कर लेता है। यहाँ तो वह मानसिक क्रिया हुई। इसके बाद अपने प्रयोजन (Motive) की पूर्ति हेतु शारीरिक चेष्टा (Body effort) आरम्भ होती है। मन में यह निश्चय कर लेने के बाद कि पानी पीने जाना है, तब वह विद्यार्थी उठता है और आज्ञा माँगकर बाहर से पानी पी आता है, यह उसकी शारीरिक चेष्टा कहलायी। अन्त में उसे चेष्टाओं के समाप्त होने पर उसे कर्म का फल होता है। वह विद्यार्थी पानी पी लेता है और उसे सन्तुष्टि हो जाती है। इस प्रकार से ऐच्छिक कर्म में अभाव, प्रयोजन, साधन का विचार, मानसिक द्वन्द्व, निश्चय आदि मन में होते हैं, चेष्टा शरीर के द्वारा होती है और उस क्रिया के हो जाने पर उसका कोई बाह्य फल (External consequence) होता है। अत: ऐच्छिक कर्म में कर्म में 3 स्तर (Stage) होते हैं।

(i) **मानसिक स्तर** (Mental Stage)—कोई भी क्रिया यहीं से आरम्भ होती है।

(ii) **शारीरिक स्तर** (Physical or Organic Stage)—क्रिया (चेष्टा) साधारणत: इसे ही कहा जाता है क्योंकि यही स्थिति दूसरों के प्रत्यक्ष होती है। अर्थात् जो दूसरों को दिखाई देती है। जबकि मानसिक स्थिति दूसरों को दिखायी नहीं देती। मन में चलने वाली बातों को दूसरों कोई कैसे जान सकता है ?

(iii) **बाह्य स्तर** (External or Extra-Organic Stage)—जहाँ क्रिया समाप्त होती है वह स्थिति क्रिया के फल की कहलाती है। ऐच्छिक कर्म की इन तीनों स्थितियों में शारीरिक स्थिति का नैतिक दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं होता है। हमारी शारीरिक चेष्टाओं में शरीर के किन-किन अवयवों का कैसे संचालन होता है? इससे किसी कर्म के उचित-अनुचित होने से क्या सम्बन्ध हो सकता। इसलिए हम मानसिक व बाह्य परिणाम का विश्लेषण करेंगे।

मानसिक स्तर (Mental Stage) **या कर्म की प्रेरणा** (Spring of action)—जैसा कि माना जाता है कि प्रत्येक ऐच्छिक कर्म के पीछे कोई न कोई प्रेरणा अवश्य होती है और इस प्रेरणा का कारण कोई अभाव (want) होता है। जब मनुष्य कोई-न-कोई अपूर्णता या कमी को महसूस करता है तब उसे तकलीफ होती है। उस अभाव या कमी को पूरा करने हेतु ही कार्य किया जाता है। इच्छा भी हम तभी करते हैं जब उसका अभाव होता है। यह कमी किसी भी प्रकार की हो सकती है, मूल प्रवृत्ति या ऐषणा सम्बन्धी, शारीरिक या बौद्धिक या नैतिक या सौन्दर्य सम्बन्धी। साथ ही साथ ये भी आवश्यक नहीं है कि कमी हम अपने में (egoistic) ही महसूस करें तब ही कोई कर्म करें। दूसरों की कमी (Altrustic) की भावना से भी हमें कर्म की प्रेरणा मिलती है। यह कमी या अभाव वास्तविक (Actual) हो सकता है। या काल्पनिक (anticipated) हो सकता है कि कोई अभी जाड़ा महसूस करें और कोट का कपड़ा खरीदना चाहें या कभी यह भी होता है कि कोई भविष्य में अच्छी नौकरी हासिल करे, इसीलिए अभी से आई. ए. एस. और बी. ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए अधिक चेष्टा करें।

कॉपीराइट की गई सामग्री

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अभाव (कमी) अपनी हो सकती है या दूसरों की अथवा वास्तविक या काल्पनिक। पशुओं की क्रियाएँ भी अभाव के कारण ही हुआ करती हैं, लेकिन उन्हें अभाव की चेतना नहीं रहती और दूसरी बात यह है कि उन्हें काल्पनिक अभाव की भावना नहीं होती। उनकी अभाव की भावना को भूख (Appetite) कहा जाता है।

जब मनुष्य में अभाव की भावना होती है तो वह कष्टप्रद होती है, पर साथ-साथ उस समय सुखप्रद भावना भी रहती है, इसीलिए कि उस कमी की पूर्ति हो जायेगी, ऐसी भावना भी वर्तमान में रहती है। पर अभाव की भावना से ही कोई कर्म नहीं हो जाता। इसके बाद दूसरी मानसिक क्रिया होती है, जिसे लक्ष्य (Goal) और प्रयोजन (Motive) कहते हैं।

लक्ष्य व प्रयोजन (End or Motive)—जब मनुष्य को किसी तरह के अभाव की चेतना होती है तब उसे अवश्य ही किसी ऐसी वस्तु का विचार होता है, जिससे वह समझता है कि उसका अभाव दूर हो जायेगा। प्यास लगने पर मनुष्य को तुरन्त ही पानी का विचार हो जाता है। उस वस्तु को ही, जिससे हम समझते हैं कि हमारा अभाव दूर हो जायेगा, क्रिया का लक्ष्य (end of the action) कहा जायेगा। जिस वस्तु का अभाव दूर करने के लिए उस वस्तु का विचार (Idea of the object) किया जाता है वह प्रयोजन (Motive) कहा जाता है। वस्तु के विचार को प्रयोजन इसलिए कहा जाता है कि वही हमें प्रेरित करता है। यहाँ पानी पीना क्रिया का लक्ष्य (end) है, पर पानी पीने का विचार क्रिया का प्रयोजन (Motive) है।

इच्छा (Desire)—जब मनुष्य में कोई कमी (Want) रहती है और उस की कमी को पूरा कैसे किया जाये ? इसका विचार मौजूद रहता है। तब हमें उस वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा होती है। कमी की भावना अब इच्छा में बदल जाती है। एषणा की भाँति इच्छा भी अन्धी होती है। उस वस्तु की प्राप्ति हेतु, जिससे हम समझते हैं कि हमारे अभाव (कमी) की पूर्ति की जायेगी, जो हमें तृष्णा देती है, वही इच्छा कहलाती है। इसमें अभाव लक्ष्य जिससे वह कमी दूर होगी और उस लक्ष्य के प्राप्त करने के साधन का विचार रहता है।

जिस समय कोई इच्छा की जाती है, उस समय दूसरी विरोधात्मक इच्छाएँ न हों तो हम शीघ्र ही किसी निश्चय पर पहुँचकर कर्म सम्पन्न कर लेते हैं, पर यदि उसी समय विरोधात्मक इच्छाएँ उठ जाती हैं तो एक द्वन्द्व (Conflict) उत्पन्न हो जाता है।

उपर्युक्त दिये गये उदाहरण में पानी की इच्छा होती है, पर साथ ही साथ न जाने की भी इच्छा होती है। दोनों इच्छाएँ विरोधात्मक हैं। दोनों की पूर्ति एक ही समय सम्भव नहीं है, इस प्रकार एक द्वन्द्व खड़ा हो जाता है।

इच्छा या प्रयोजन का संघर्ष या मानसिक द्वन्द्व (Conflict of Desires or Motives or Mental Conflict)—किसी जटिल कार्य में कभी-कभी अनेक विरोधी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। एक समय में कई आवश्यकताएँ पूरा होना चाहती हैं, इस प्रकार उनसे अनेक इच्छाएँ, लक्ष्य व प्रयोजन उठ जाते हैं। सभी एक-दूसरे के अनुकूल नहीं रहते हैं। विविध इच्छाएँ, मन को विविध दिशाओं में खिंचती हैं। एक इच्छा पूरी होने पर दूसरी इच्छा उत्पन्न हो जाती है। सभी इच्छाएँ एक साथ पूरी नहीं हो सकती। इच्छाएँ विरोधी स्वभाव की होती हैं। इस प्रकार से उनमें संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। यही अवस्था मानसिक द्वन्द्व की है। मानसिक द्वन्द्व में बाह्य शक्तियों में द्वन्द्व नहीं होता है। इच्छाएँ हमसें भिन्न कोई बाह्य शक्ति नहीं है। ये स्व (Self) की ही दशाएँ हैं। विरोधी इच्छाएँ भी स्व: की ही हैं, अत: इच्छा-द्वन्द्व में स्व का किसी बाह्य शक्ति से द्वन्द्व नहीं होता, अपितु स्व का स्व से ही संघर्ष होता है।

योद्धा उसका विरोधी और युद्ध भूमि सब स्व (self) ही होता है। यह संघर्ष स्व के भिन्न दष्टिकोणों का है।

द्वन्द्वात्मक अवस्था में मन कार्य को स्थगित (Pause) कर देता है और फिर वह सोचने लगता है कि अनेक इच्छाओं में कौन-सी इच्छा को पूरा किया जाये ? उक्त विद्यार्थी को यह मानसिक द्वन्द्व होता है कि वह बाहर पानी पीने जाये या नहीं तब वह सोचना आरम्भ कर देता है कि उसे उस वक्त क्या करना चाहिए ?

विचारण (Deliberation)—जिस समय इच्छाओं का द्वन्द्व होता है तब मन कार्य को स्थगित कर यह विचारने लगता है कि विविध इच्छाओं की पूर्ति में कौन-कौन से गुण दोष है ? भिन्न विकल्पों (Alternatives) की मन में तुलना करने लगता है। यदि ऐसे किया जाये तो कैसा रहेगा ? या वैसा किया जाये तो क्या हानि होगी ? आदि। मन विभिन्न इच्छाओं के फल को तौलता है। तौलने का लक्ष्य यह होता है कि विभिन्न इच्छाओं में किसका चुनाव किया जाये ? इस मानसिक क्रिया को विचारण करना कहा जाता है। उक्त विद्यार्थी ये चिन्तन करने लगता है यदि वह जाये तो कैसा रहेगा और न जाये तो क्या फल होगा ?

कॉपीराइट की गई सामग्री

चुनाव का निर्णय (Choice of Decision)—जब मन विभिन्न इच्छाओं द्वारा प्रेरित कर्मों के गुण दोषों का चिन्तन कर लेता है तब उस समय किसी का चुनाव हो जाता है अर्थात् अपने को उसी से हम एकाकार कर लेते हैं। किसी इच्छा का चुनाव करने के बाद अन्य को त्याग दिया जाता है। वह विद्यार्थी विचार कर लेने के बाद जाने के विचार को ही चुनता है या नहीं जाने का विचार त्याग देता है। यही क्रिया चुनाव या निर्णय कही जाती है। इसके साथ ही साथ जिस लक्ष्य से क्रिया करने का निर्णय किया जाता है, उसे प्राप्त करने का साधन भी विचार कर लिया जाता है। इस तरह से निश्चित साध्य व साधन का चुनाव या निर्णय हो जाता है।

इसका यह अर्थ नहीं निकलता कि जिस विचार का निर्णय किया गया वह हमसे पृथक् कोई प्रबलतम शक्ति है, जो हमारे निर्बल विचारों के ऊपर विजय प्राप्त कर लेती है। स्व के द्वारा चुना हुआ प्रयोजन कर्म का वास्तविक प्रयोजन हो जाता है। वैसी इच्छाएँ या प्रयोजन जो नहीं चुने गये, वे मन के अचेतन स्तर में चले जाते हैं। प्रतिद्वन्द्वी इच्छाएँ कर्म के सम्भावित प्रयोजन होते हैं और चुना हुआ प्रयोजन वास्तविक। कर्म के साध्य व साधन के विचार को ही अभिप्राय (Intention) कहा जाता है। विद्यार्थी द्वारा बाहर जाने के विचार को चुन लेने के साथ-साथ वह कैसे जायेगा इसका विचार कर लेता है ? यही उनका अभिप्राय है।

निश्चय या संकल्प (Determination, Resolution, Will or Volition)—जब लक्ष्य व साधन का निर्णय किया जाता है तो हम संकल्प कर लेते हैं। कभी-कभी जो निर्णय कर लिया जाता है, उसको तुरन्त ही कार्यरूप में परिणत् कर लिया जाता है। लेकिन कभी कभार ऐसा नहीं हो पाता तब हम निश्चय कर लेते हैं कि हम अपने निर्णय पर डटे रहेगें। निश्चय पूर्वक अपने निर्णय पर डटे रहने का और दुविधा को हटाने का संकल्प (Will) होता है। संकल्प कर लेने के पश्चात् हम अपने संकल्प को शारीरिक क्रिया द्वारा व्यक्त करते हैं।

शारीरिक क्रिया (Organic or Bodily Stage)—संकल्प करने के पश्चात् हमारे शरीर के अवयव गतिशील हो जाते हैं।

बाह्य परिणाम (Extra Organic Stage)—शारीरिक गति के कारण बाह्य जगत में परिवर्तन होता है और यही परिवर्तन परिणाम (Consequence) कहलाता है। जिस अभिप्राय (Intention) जैसा कर्म किया जाता है उसका वैसा ही परिणाम या फल होता है। ऐसी स्थिति में चुने हुए उद्देश्य की सिद्धि हुआ करती है तथा साथ ही साथ कुछ आकस्मिक घटनाएँ भी हो जाती हैं यदि कर्म सफल न हुआ तो फल दूसरा ही होता है। इस प्रकार से कहा जा सकता है कि सफल कर्म के परिणाम में निम्नलिखित बातें होती हैं—

(i) चुने हुए उचित व अनुचित साधन की सिद्धि।

(ii) चुने हुए उद्देश्य (End or object) की सिद्धि, जिसके लिए कर्म किया जाता है।

(iii) कुछ प्रत्याशित (Fore seen) परिणाम (Consequence) तथा कुछ (Unforeseen)।

लेकिन जिस उद्देश्य से कोई कर्म किया गया है, वही अन्तिम उद्देश्य न होकर दूसरे उद्देश्यों का साधन (Means) मात्र हो सकता है। परीक्षा को उत्तीर्ण करने के लिए विद्यार्थी मेहनत करता है। बी. ए. पास करना उसका उद्देश्य है, लेकिन वह स्वयं ही साधन है एक-दूसरे उद्देश्य का, अच्छी नौकरी पाने का, बी. ए. पास करना चाहते हैं अच्छी नौकरी पाने के लिए। कोई भी ऐच्छिक कर्म साधन हो जाता है दूसरे उद्देश्य का कोई भी कर्म किसी भी उद्देश्य से किया जा सकता है और वह उद्देश्य एक साथ साधन होता है, किसी दूसरे उद्देश्य की पूर्ति हेतु। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मनुष्य के जीवन में साध्य व साधनों की श्रृंखला होती है।

इच्छा का विश्लेषण (Analysis of Desire)—इच्छा वह है जिसमें किसी उद्देश्य को पूरा करने की चाह हो, जिससे अभाव पूर्ति का अभाव हो।

यह एक प्रकार का आवेग होता है, जिससे उद्देश्य पूर्ति होन पर उसमें भविष्य के सुख की कल्पना होती है। किसी भी आवेग का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है और जब वह उद्देश्य को हासिल कर लेता है तब उसे सन्तोष होता है। इसलिए ही इच्छा में ज्ञानात्मक, रागात्मक व क्रियात्मक तत्व मौजूद रहते हैं। इससे यह अर्थ निकलता है कि जिस मानसिक स्थिति को इच्छा कहा जाता है, उसमें किसी बात की चेतना रहती है, सुख-दुःख की भावना होती है तथा मस्तिक क्रियाशील रहता है।

ज्ञानात्मक तत्व (Cognitive Factors)—जब किसी वस्तु की इच्छा होती है, तब—

(i) मनुष्य को उस अभाव की चेतना रहती है, जिसकी पूर्ति की इच्छा की जाती है।

(ii) उस वस्तु का विचार रहता है, जिससे अभाव की भावना दूर होने का विश्वास होता है।

कॉपीराइट की गई सामग्री

(iii) उचित व अनुचित साधनों का भी विचार रहता है, जिससे उद्देश्य प्राप्त होता है।

(iv) वास्तविक स्थिति जब अभाव की पूर्ति नहीं हुई है और उस भविष्य की स्थिति के भेद की चेतना जब अभाव की पूर्ति हो जायेगी। इस बात की सदैव चेतना रहती है कि अभी अर्थात् जिस समय इच्छा की जा रही है, अभाव की पूर्ति नहीं हुई।

(v) जितना अधिक वर्तमान स्थिति व भविष्य स्थिति में अन्तर मालूम होता है, इच्छा उतनी ही मजबूत व बलवती हुआ करती है।

रागात्मक तत्व (Affective Factors)—जब मनुष्य के पास किसी भी प्रकार की कोई कमी या अभाव होता है, तब ही उसके मन में इच्छा जाग्रत होती है, जब वह वस्तु उसके पास न रहती तब उसे दु:ख का भाव होता है।

उपर्युक्त से सिद्ध होता है कि इच्छा का मुख्य उद्देश्य सुख की प्राप्ति नहीं। सुख का अनुभव उसे तब होता है जब उसकी इच्छा पूरी हो जाती है। यह वास्तविकता है भविष्य में इच्छा की पूर्ति की कल्पना मात्र से ही सुखप्रद भावनाएँ उदय होती रहती हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि इसमें सुख व दु:ख का भाव मिश्रित होता है। लेकिन दु:ख की ही भावना अधिक मात्रा में होती है। दु:ख की भावना तब तक बढ़ती रहती है, जब तक इच्छा की पूर्ति हो नहीं जाती।

क्रियात्मक तत्व (Conative Factors)—इच्छा की मानसिक स्थिति में उद्देश्य प्राप्ति की एषणा होती है। इच्छा दूसरी मानसिक क्रियाओं से इस बात में भिन्न है कि इसमें मस्तिष्क पूर्णरूपेण क्रियाशील रहता है। क्रिया की मात्रा इसमें बहुत अधिक रहती है। उद्देश्य प्राप्त करने वाले कर्म के लिए वेश युक्त मनोवृत्ति रहती है। इच्छा शारीरिक क्रिया तो नहीं पर शारीरिक क्रिया का विचार अवश्य है।

इच्छा, चरित्र व आत्मा (Desire, Character & Self)—इच्छा उसी में विद्यमान होती है जो प्राणी चिन्तनशील होता है। ये प्रवृत्ति पशु-पक्षियों में अलग होती है क्योंकि उनमें मनुष्यों के समान किसी भी विषय की चेतना तथा शुभाशुभ विचार नहीं होता। इच्छाएँ मनुष्य की किसी शुभ वस्तु की, जिसे वह शुभ समझता है, प्राप्त करने की चेतना या मानसिक चेष्टा है। इच्छाएँ सदैव किसी विषय पर आधारित होती हैं। किसी वस्तु को मूल्यवान मानना यह हमारे चरित्र पर निर्भर करता है। जैसा चरित्र होता है, इच्छाएँ भी वैसी हुआ करती हैं। चरित्र मनुष्य का स्व (self) है। इसलिए कहा जा सकता है कि इच्छा का स्व में आत्मा व चरित्र से सम्बन्ध घनिष्ठता का है। इच्छा स्व में कोई बाह्य शक्ति नहीं होती है, न ही यह कोई अन्य शक्ति है। इच्छाएँ आत्म-रोचक वस्तुओं की प्राप्ति हेतु ही उदय होती हैं। म्यूडरेड ने इसके स्वरूप के विषय में बताते हुए कहा कि पहली बात तो यह है कि इच्छा आत्मचेतन प्राणियों में होती है तथा यह पशु-पक्षियों से भिन्न होती है। दूसरी बात यह है कि इच्छाएँ मनुष्य के स्वरूप अर्थात् चरित्र की बनावट पर निर्भर करती है और जिस वस्तु की हम इच्छा करते हैं, उसमें ही हम स्व की पूर्ति चाहते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वे आत्म-पूर्ति के साधन है।

इच्छा का क्षेत्र (Universe of Desire)—प्रत्येक इच्छा का अपना क्षेत्र तथा विषय होता है। अनेक प्रकार की इच्छाओं का क्षेत्र अलग भी हो सकता है और या एक ही प्रत्येक मनुष्य की एक विशेष इच्छा क्षेत्र होता है और उसमें उसको रहने की आदत होती है और यही क्षेत्र उसका स्थायी चरित्र कहलाता है। इस तरह से कोई भी इच्छा मनुष्य के चरित्र से स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। अलग स्थितियों में इच्छा का क्षेत्र भी अलग होता है। जैसे भिन्न स्वास्थ्य में, भिन्न आर्थिक दशा में। लेकिन इच्छाएँ कभी स्वतन्त्र नहीं होतीं, उनका सम्बन्ध सदैव किसी-न-किसी इच्छा क्षेत्र से रहता है। इस प्रकार से कहा जा सकता है कि इच्छाएँ हमारे चरित्र के विशेष समय में प्रकाशित रूप हैं।

प्रयोजन का विश्लेषण (Analysis of Motive)—मानव जो भी ऐच्छिक कर्म करता है, उसका यही लक्ष्य होता है कि किये गये कर्म से उसे सुख आनन्द की प्राप्ति हो तथा दु:खानुभूति से मुक्त रहे। इसीलिए प्रयोजन को प्रवर्त्तक माना गया है। मानव द्वारा जो भी कर्म किया जाये उसको गति प्रदान करने वाली शक्ति (Moning force) ही प्रयोजन (Motive) प्रवर्तक है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि वही प्रयोजन है जिसकी वजह से हम कोई काम करते हैं। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि किसी कर्म का प्रवर्तक या कारण क्या हो सकता है ? यह दो प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—एक उत्तेजक दूसरा प्रेरक। चूँकि मनुष्य को प्रेरण मिलने के पीछे भावना ही निहित होती है या उसे लक्ष्य को पूरा करने के लिए कोई कर्म करने की गति मिलती है। भावनाओं से अभिप्राय सुख-दु:ख दया इत्यादि हैं उनके अनुसार ही कर्म के प्रयोजन को गति दी जाती है। यह मत सुखवाद विचारकों

कॉपीराइट की गई सामग्री

बेन, बेन्थम एवं मिल आदि से उत्पन्न होता है। उनके अनुसार सुख एवं दु:ख की भावनाएँ ही मनुष्य को कर्मों की प्रेरणाएँ प्रदान करती हैं।

म्यूडरेड ने इस सन्दर्भ में कहा है कि "एकान्त रूप से भावना किसी कर्म का प्रयोजन नहीं है। कोई कर्म भावनाओं से शुरू होकर अन्त में विचार का रूप लेते हुए लक्ष्य की ओर मुड़ जाता है तब उसकी प्राप्ति के लिए किये जाने वाला प्रयास ही कर्म कहलाता है।" **ग्रीन** के अनुसार, "मनुष्य लक्ष्य के विचार (dea of the end) को ही सामने रखकर उसकी प्राप्ति हेतु कर्म करने के लिए प्रेरित होता है। **मैकेंजी** ने बतलाया है कि "नैतिक कर्म ऐच्छिक होते हैं और वे साधारणत: भावना प्रधान नहीं होते न केवल भावना ही उनके लिए पर्याप्त होती है वरन् उनके साथ-साथ साध्य का विचार भी आवश्यक होता है।"

किसी भी कर्म को करने के प्रति इच्छाओं का प्रबल होना अति आवश्यक है और अनेक लक्ष्यों के विचार हमारे समक्ष आते हैं। क्या सभी को प्रयोजन मानना चाहिए या मात्र वैसे ही लक्ष्य के विचार को, जो अन्त में मनुष्य किसी कर्म के पहले ही चुन लेता है ? वास्तविकता तो यह है कि जिस इच्छा का चयन किया जाये उसे ही प्रयोजन मानना चाहिए क्योंकि कर्म करने के लिए वही प्रेरित करती है न कि समस्त इच्छाएँ कर्म की प्रेरणा देती हैं। इस सन्दर्भ में डुई के शब्द उचित प्रतीत होते हैं। "कोई इच्छा जो चुन ली जाती है, वही प्रयोजन हो जाता है" उनका मानना है कि प्रयोजन में भावना का निहित होना बुद्धि से भी जुड़ा है क्योंकि मनुष्य अपनी जिस इच्छा का चयन करता है वह विवेकपूर्ण विचार से जुड़ी होती है। अत: निष्कर्ष के रूप में तो यही कहा जा सकता है कि प्रयोजन में भावना एवं वृद्धि दोनों का ही सामंजस्य है।

अभिप्राय (Intention)–किसी भी ऐच्छिक कर्म को करने में जहाँ एक ओर भावनाएँ निहित होती हैं वहीं दूसरी ओर अभिप्राय भी उस वस्तुस्थिति का हिस्सा होता है। अभिप्राय कई हो सकते हैं भले ही कोई भी एक कर्म क्यों न हो। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति को परीक्षा देने जाना हो और उससे पूछा जाए कि आप कहाँ जा रहे हैं तो वह केवल परीक्षा देने के अभिप्राय को ही नहीं वरन् उससे पूर्व के अभिप्राय से भी जुड़ा होता है अर्थात् उसे जिस साधन से परीक्षा स्थल तक पहुँचना है वह यानि कि बस, ऑटो या रिक्शा आदि भी उसका अभिप्राय है। अत: एक कर्म में अभिप्राय अनेक हो सकते हैं। इनको निम्नवत् स्पष्ट किया जा सकता है–

(i) **तात्कालिक एवं दूरस्थ अभिप्राय** (Immediate and Remote Intention)–कर्म के तात्कालिक अभिप्राय से तात्पर्य है जो उसी समय प्रदर्शित होता हो तथा दूरस्थ अभिप्राय वह है जिसका परिणाम दूरगामी हो। उदाहरण के लिए एक पिता का अपने बच्चे को दण्ड देना कि तुम पढ़ाई नहीं करते हो। इसका तात्कालिक अभिप्राय है कि उसे कठोरता के साथ नियन्त्रण में रखना तथा दूसरा दूरस्थ अभिप्राय यह है कि उसे भविष्य के लिए उन्नति की ओर ले जाने का प्रयास करना इस प्रकार दोनों अभिप्राय मिलाकर ही पूर्ण अभिप्राय का प्रयोजन सिद्ध हो सकता है।

(ii) **आन्तरिक एवं बाह्य अभिप्राय** (Inner and Outer Intention)–यदि कोई छात्र परीक्षा काल में किसी गुरु का सम्मान करता है तो उसका बाह्य अभिप्राय है कि वह आदर की भावना रखता है किन्तु उसका आन्तरिक अभिप्राय यह है कि वह परीक्षा में उत्तम अंक की कामना रखता है। इस प्रकार आन्तरिक एवं बाह्य अभिप्राय दोनों ही मिलकर पूर्ण अभिप्राय को स्पष्ट करते हैं।

(iii) **प्रत्यक्ष एवं परोक्षा अभिप्राय** (Direct and Indirect Intention)–यदि किसी नाव में सवार कोई शत्रु यात्री का डुबोकर मारना हो तो पहला प्रत्यक्ष अभिप्राय यही है कि नाव को डुबोकर उसको मार देना किन्तु दूसरा अभिप्राय परोक्ष रूप में सभी यात्रियों को मृत्यु की ओर ले जाता है।

(iv) **चेतन एवं अचेतन अभिप्राय** (Conscious and Unconscious Intention)–आधुनिक मनोविज्ञान की विचारधारा ने मनुष्य के व्यवहार में उसके अचेतन मन का प्रभाव स्पष्ट किया है। इसमें मनुष्य स्वयं ही नहीं जानता कि अपने कर्मों का वास्तविक अभिप्राय क्या है ? और जिस अभिप्राय से दूसरे के समक्ष कोई कर्म कर रहा है, वह केवल वास्तविक अभिप्राय का आचरण मात्र होता है।

(v) **आदर्शात्मक एवं वस्तुगतात्मक अभिप्राय** (Formative and Meterialistic Intention)–इस प्रकार के अभिप्रायों को वस्तुत: राजनैतिक दलों में देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए भारतीय समाजवादी दल एवं अन्य दल बहुजन समाजवादी दल की सरकार को सत्ताविहीन करना चाहते हैं। अत: सभी दलों का वस्तुगत अभिप्राय एक है किन्तु आदर्श अभिप्राय अलग-अलग हो सकता है कि एक दल चाहता है कि बसपा दलितवादी है, दूसरे दल चाहते हों कि अशांति व्यवस्था फैलाने में वह आगे है।

कॉपीराइट की गई सामग्री

इस प्रकार किसी भी ऐच्छिक कर्म के अनेक अभिप्राय हो सकते हैं तथा मनुष्य जिसके लिए कर्म करता है वह उद्देश्यात्मक (Persuasive) और जिस निवारण के लिए (Dissuasive) करता है वह उसके दु:खों को दूर करने से सम्बद्ध रखता है अत: अभिप्राय में प्रयोजन (Motive) एवं साधन (Means) दोनों का वर्चस्व है।

प्रयोजन एवं अभिप्राय (Motive and Intention)—किसी कर्म का प्रयोजन वह है जिसके लिए कर्म किया जाता है अर्थात् लक्ष्य का विचार हमें कर्मों के लिए प्रेरित करता है किन्तु इसे प्राप्त करने में कोई-न-कोई साधन प्रयोग करना पड़ता है। यह साधन कष्टदायक भी हो सकता है जबकि अभिप्राय में दोनों शामिल हैं प्रर्वतक एवं निवारक।

चरित्र एवं आचरण (Character and Conduct)—मनुष्य अपनी प्रकृति से कुछ प्रेरित होकर कार्य करता है या यह कह सकते हैं कि अपनी मानसिक एवं नैतिक प्रकृति के कारण मनुष्य जो भी कार्य करता है वह किसी-न-किसी प्रकार से दूसरे मनुष्यों से भिन्न होते हैं। मनुष्य का विशेष गुण है विवेक बुद्धि (rationality) इसके कारण ही मनुष्यों में समानता और भेद का कारण उत्पन्न होता है। इस प्रकार मनुष्य की मानसिक या नैतिक विशेषताओं को चरित्र की संज्ञा दी जाती है। चरित्र स्वभाव से है क्योंकि स्वभाव तो प्राकृतिक है किन्तु चरित्र अर्जित होता है। यह मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति का कार्य परिणाम है। मनुष्य अनेक बार प्रकृति के अनुकूल या स्वभाव के अनुसार ही क्रिया करता है और उसमें उचित-अनुचित का विचार निहित होता है। हम भी अपने चरित्र का निर्माण इसी प्रकार करते हैं अपनी इच्छा-शक्ति का दृढ़ संकल्प हमें सदैव सद्गुण की ओर प्रेरित करता है और हमारे चरित्र का उत्तम विकास व निर्माण होता है। यहाँ यह विदित रहे कि किसी एक या दो कर्म के सद्गुण से अच्छा चरित्र नहीं कहा जा सकता वरन् मनुष्य की आत्मीय इच्छा शक्ति उसे सदैव ही अच्छा कर्म करने के लिए प्रेरित करे तब ही अच्छा चरित्र कहा जा सकता है।

मनुष्य का ऐच्छिक कर्म है 'आचरण' (Conduct) जिसमें मनुष्य की इच्छा-संकल्प की भावना निहित रहती है। दूसरे शब्दों में, आचरण मनुष्य के चरित्र का व्यक्त (Manifested) रूप है। आचरण किसी अवसर पर की गयी इच्छा के वशीभूत हो सकता है। इसलिए चरित्र का सम्बन्ध तो हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व से जुड़ा है, जबकि आचरण का सम्बन्ध हमारे कर्म से यानी दोनों परस्पर एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। जैसा मनुष्य का चरित्र होगा वैसा ही उसका आचरण होगा और जैसा उसका आचरण होता है। वैसा ही उसके चरित्र का निर्माण होता है।

मनुष्य के आचरण के दो निर्धारक तत्व होते हैं—प्रथम उसका चरित्र (Conduct) और दूसरा उसकी बाहरी परिस्थितियाँ (Outer Circumsterces)। इसलिए बाहरी परिस्थितियाँ केवल वातावरण से ही नहीं वरन् वातावरण को परिस्थिति मानना हमारे चरित्र पर निर्भर करता है।

अभ्यास ज्ञान एवं सद्गुण (Habit Knowledge and Virture)—मनुष्य जब किसी ऐच्छिक कर्म को बार-बार करता है तो उसे अभ्यास हो जाता है तत्पश्चात् मनुष्य को उसके लिए संकल्प या चेतना अवस्था की आवश्यकता नहीं पड़ती अर्थात् जब कोई कर्म स्वत: ही बिना प्रयास एवं संकल्प के शीघ्रता से पूर्ण हो जाता हो तो वही अभ्यास है।

अरस्तु ने धर्म को अभ्यास कहा है। नैतिक विवेक के रहने पर भी हम बुरे कर्मों के लिए प्रेरित होते रहें तो अनुचित है अत: कर्त्तव्यों के अभ्यास से ही धर्म की उत्पत्ति होती है। सुकरात ने ज्ञान को धर्म (सद्गुण) मानते हुए कहा है कि ज्ञान का अर्थ है विशेष अवस्था में मनुष्य के कर्त्तव्य का ज्ञान जो कि नैतिक विवेक पर ही निर्भर करता है।

सत्य यह है कि धर्म के लिए विवेक एवं अभ्यास दोनों ही परमावश्यक है। नैतिक गुणों की पहचान और पुन: उसका आचरण करना अभ्यास की श्रेणी में आता है चूँकि धर्म की अवधारणा में विवेक एवं अभ्यास दोनों ही निहित हैं। इस प्रत्यय को अरस्तु ने अपने शब्दों में अत्यन्त सुन्दर ढंग से व्यक्त करते हुए कहा है, "धार्मिक मनुष्य वह है जो एक बार नहीं, बल्कि बार-बार कर्त्तव्यों का आचरण करता है और उसमें उसे आनन्द की अनुभूति होती है।

अत: चारित्रक विकास में निहित रहने वाली बातें संकल्प बल एवं संयम-अभ्यास, नैतिक आदर्श की व्यापक अवधारणा, कर्त्तव्यों का नित्य पालन, सच्चाई, सदाचार एवं कर्त्तव्यों की गहन अन्तर्दृष्टि पर निर्भर करती हैं।

नैतिक दोष एवं प्रकृतिक दोष (Moral Evil and Natural Evil)—यह मानव की स्वतन्त्र इच्छा का परिणाम कहा जायेगा, जबकि इच्छापूर्वक किसी मानव-कर्म का परिणाम उत्तम न हो अर्थात् नैतिक दोष की श्रेणी में आता है किन्तु प्राकृतिक विपदाओं या दुर्घटनाओं के कारण विपत्तियाँ आ जाना प्राकृतिक-दोष की श्रेणी में आता है।

कॉपीराइट की गई सामग्री

image
not
available